डाक पंजीयन क्र. म.प्र. भोपाल/162/2018–20
पोस्टिंग दिनाँक : 15 मई 2020, पृष्ठ सं. 40
प्रकाशन दिनाँक: 15 मई 2020

आर.एन.आई.पं.क्र. MP HIN/2004/12178

ISSN 2319-3107

मूल्य ₹ 25/-

457

सितंबर, 1981 से प्रकाशित

आंचलिक पत्रकार

"पृथ्वी हर व्यक्ति की जरूरत पूरी कर सकती है, पर उसके लालच का नहीं।"
महात्मा गांधी

कोरोना के सबक

चलो प्रकृति की ओर

सप्रे संग्रहालय
या विद्या या विमुक्तये

पत्रकारिता, जनसंचार और विज्ञान संचार की शोध पत्रिका

https://www.anchalikpatrakar.com

भारतीय पत्रकारिता कोश

विजयदत्त श्रीधर

वाणी प्रकाशन, नईदिल्ली

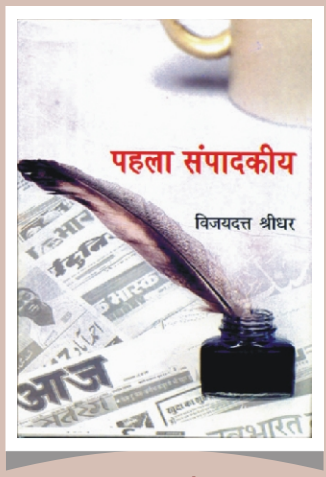

पहला संपादकीय

विजयदत्त श्रीधर

सामयिक प्रकाशन, नईदिल्ली

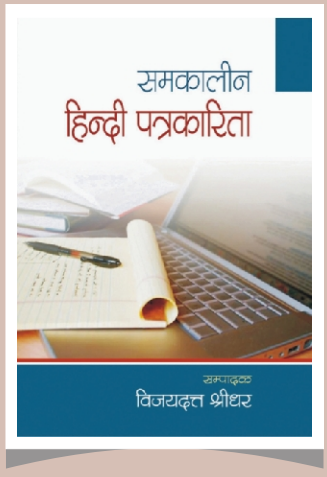

समकालीन हिन्दी पत्रकारिता

सं. विजयदत्त श्रीधर

सामयिक प्रकाशन, नईदिल्ली

माधवराव सप्रे रचना संचयन

सं. विजयदत्त श्रीधर

साहित्य अकादेमी, नईदिल्ली

हमारे प्रकाशन

माधवराव सप्रे स्मृति समाचारपत्र संग्रहालय एवं शोध संस्थान
मुख्य मार्ग क्र. 3, पत्रकार कालोनी के सामने, भोपाल (म.प्र.) 462 003
संपर्क : 0755 - 2763406, मोबाइल 09425011467, 7999460151
Email : sapresangrahalaya@yahoo.com

ISSN 2319–3107

सितंबर, 1981 से प्रकाशित

मई – 2020

आंचलिक पत्रकार

वर्ष–39, अंक–9, पूर्णांक–457

एक प्रति ₹ 25/– वार्षिक ₹ 250/–

पत्रकारिता, जनसंचार और विज्ञान संचार की शोध पत्रिका

अनुक्रम

1.	कोरोना के सबक : चलो प्रकृति की ओर	विजयदत्त श्रीधर	4
2.	पाटलिपुत्र की धरोहर रामजी मिश्र मनोहर		6
3.	विश्वविद्यालयों की रिसर्च कमेटियाँ ?	राजेन्द्र रंजन चतुर्वेदी	7
4.	साहित्यिक प्रयोगों की पाठशाला 'वीणा'	डा. सोनाली नरगुन्दे, डा. मनीष काले	8
5.	अखबार मरेंगे तो लोकतंत्र बचेगा ?	अरुण कुमार त्रिपाठी	13
6.	अखबार का मेडिकल बुलेटिन	विजय मनोहर तिवारी	17
7.	छाया पत्रकारों की धुंधली होती छाया	शिवकुमार विवेक	19
8.	बदलेंगे, बचेंगे और बढ़ेंगे भारत के अखबार	संजय द्विवेदी	23
9.	पत्रकारिता पर अंबेडकर के विचार	उमेश चतुर्वेदी	26
10.	रीवा का 'प्रकाश'	सुधीर जैन	29
11.	पूर्वोत्तर भारत में स्त्रियों की सामाजिक....	तेजी ईशा	30
12.	खबर खबरवालों की	संजय द्विवेदी	35

E-mail
sapresangrahalaya@yahoo.com
editor.anchalikpatrakar@gmail.com
(0755) 2763406, मोबा. 9425011467
7999460151 https://www.facebook.com/vijaydutt.shridhar.9

संपादकीय पत्र व्यवहार
संपादक, 'आंचलिक पत्रकार'
माधवराव सप्रे स्मृति समाचारपत्र संग्रहालय एवं शोध संस्थान
मेन रोड नं. 3, भोपाल (म.प्र.) 462003

सम्पादकीय

कोरोना के सबक : चलो प्रकृति की ओर

■ विजयदत्त श्रीधर

फोटो लगी खबरें आई हैं कि हर की पैड़ी में दसियों साल बाद गंगा का साफ-सुथरा पानी बह रहा है। तलहटी नजर आ रही है। अर्थात विकास दानवों की विनाश लीला और गंगा भक्तों की पाखंड लीला से इन दिनों गंगा मुक्त है।

मध्यप्रदेश की पुण्य-सलिला मानी जाने वाली नर्मदा निर्मल है। जल से भरी-पूरी है।

समाचार है कि दिल्ली के डेढ़ करोड़ रहवासियों को न जाने कितने दशक बाद आकाश में चमकते सितारे दिखने लगे हैं। इस घटना का महत्व दूर अमेरिका के 'न्यूयार्क टाइम्स' ने इस कदर आका है कि इस पर बाकायदा लेख छापा है।

सूचना यह भी है कि पंजाब के जालंधर जैसे शहरों के निवासियों को ऊँचे घरों की छत से हिमालय की बर्फीली चोटियाँ नजर आने लगी हैं।

वायुमण्डल साफ है। प्रदूषण खतरे के स्तर से बहुत नीचे आ गया है। शुद्ध हवा मिल रही है। भूजल स्तर बढ़ा है।

शोर-शराबा निचले पायदान पर आया तो ध्वनि प्रदूषण से निजात मिली।

आँगन में, मैदानों में, सड़कों पर विचरते हुए पंछी आनंद विभोर कर रहे हैं।

कुल मिलाकर कोरोना के कहर ने वे तमाम हलचलें ठप कर दीं जिनके कारण कुदरत की नियामतें विनाश के शिकंजे में दम तोड़ती थीं। इस संकट काल ने यह सबक भी सिखाया है कि विकास का दानव विज्ञान की दम दिखाए या प्रौद्योगिकी का दम्भ भरे, प्रकृति का विकल्प नहीं हैं। वास्तव में प्रकृति ही जीवनदायिनी है।

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने पश्चिम की सभ्यता को राक्षसी सभ्यता कहा है। सच ही कहा है। यह प्रमाणित तथ्य है कि पश्चिमी सभ्यता, और जिसकी गुलामी आज सारी दुनिया ढो रही है, जिसे प्रगति, आधुनिकता और सुखोपभोग बताती है वह वास्तव में प्राणी और प्रकृति के लिए विनाश का संकट लेकर आती है। जबकि गांधी जी ने चेताया था कि ''पृथ्वी हर व्यक्ति की जरूरत पूरी कर सकती है, पर उसके लालच का नहीं।'' अभी गांधी जी की मान्यता के पीछे भारतीय संस्कृति का वह सूत्र है जिसमें ऋषि प्रज्ञा ने कहा है - ''माता भूमि: पुत्रो अहम् पृथिव्या:।'' अर्थात भूमि माता है और हम इस पृथ्वी के पुत्र हैं। इस सूत्र को अपना लें तो शोषण का भाव तिरोहित हो जाएगा।

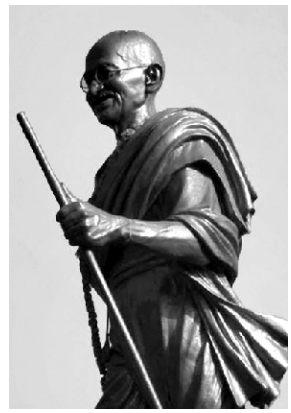

इस बीच पत्रकार राकेश दुबे ने एक वीडियो क्लिप भेजी। इसमें दो टूक कहा गया है --- हम धोखे में थे कि हम पृथ्वी को बचा सकते हैं। प्रदूषण कम कर सकते हैं। अब पता चला कि अगर इन्सान टाँग न अड़ाए तो धरती तेजी से खुद को 'हील' करती है। हम धोखे में थे कि जंक फूड के बिना जिन्दा नहीं रह सकते। सारे रेस्तरां बन्द हैं दुनिया तब भी चल रही है। हम धोखे में थे कि फिल्मी सितारे और क्रिकेटर असली हीरो हैं। अब पता चला कि वे तो केवल मनोरंजनकर्ता हैं। हम धोखे में थे कि तेल (डीजल, पेट्रोल) बहुत कीमती चीज है। अब पता चला कि हमारे बिना तेल की कोई कीमत नहीं। हम धोखे में थे कि शॉपिंग मॉल बंद हो जाएँगे तो दुनिया रुक जाएगी। लेकिन दुनिया अब भी चल रही है। हम बड़े धोखे में थे कि कोई ज्योतिष, कोई मौलवी, कोई पंडित, कोई प्रीस्ट बीमारों की जान बचा सकता है। लेकिन ये कोई काम नहीं आ रहे।

वास्तविकता यह है कि लाकडाउन से असली जिन्दगी को कोई फर्क नहीं पड़ा। जो फर्क पड़ा वह नकली जिन्दगी को पड़ा है। फिजूलखर्ची बन्द हो गई। हम परिवार के साथ समय बिता रहे हैं। बच्चे आँगन में खेल रहे हैं। मुर्गियाँ अंडे दे रही हैं। सब्जियाँ अब भी हो रही हैं। फूल अब भी खिल रहे हैं। गाय अब भी दूध दे रही है। आपके घरों तक पहुँच भी रही हैं। नदियाँ अब भी बह रही हैं। बल्कि पहले से ज्यादा साफ बह रही हैं।

सयाने कहते आए हैं कि वक्त की लाठी में आवाज नहीं होती। मार गहरी पड़ती है। यह सबक कोरोना ने सिखा दिया है। अमेरिका, यूरोप, चीन आदि के पास परमाणु हथियारों का जखीरा है। भाँति-भाँति के उपकरण और मशीनें हैं। विमान और जहाज हैं। हवा से भी तेज चलने वाली रेल गाड़ियाँ हैं। लेकिन सब निरर्थक। सबसे ज्यादा ताकतवर और सबसे ज्यादा विकसित कहे जाने वाले देशों में कोरोना से आई मौत का बवंडर सबसे ज्यादा है।

वक्त का तकाजा है कि प्रकृति के विरुद्ध की जाने वाली करतूतों और उसकी मानसिकता से दुनिया उबरे। भारत की प्रकृति प्रधान संस्कृति के पास लौटे। फर्जी सुख-साधनों के पीछे भागना बंद करे। गाँवों को आत्मनिर्भर इकाई के रूप में विकसित करें। गांधी के ग्राम स्वराज को साकार करें। महात्मा गांधी ने जो रास्ता दिखाया है वही हमारी सुरक्षा और असली सुख का मार्ग प्रशस्त करेगा। ❑❑

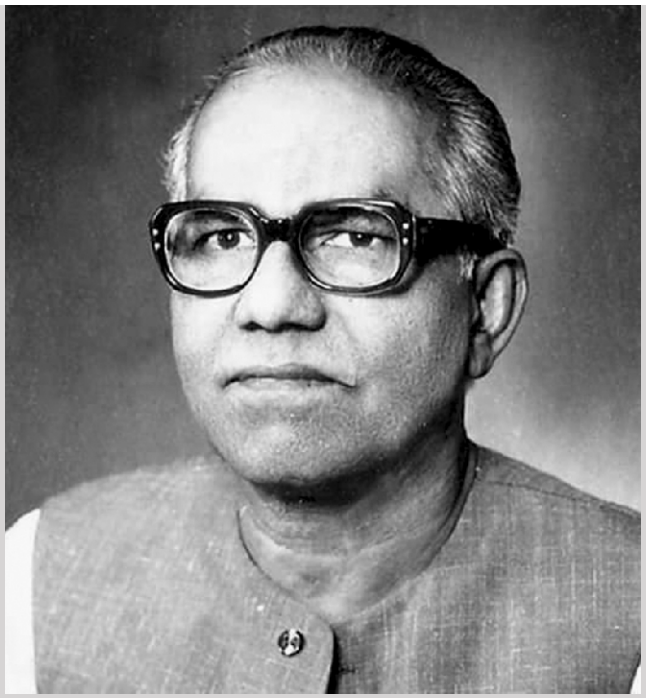

पाटलिपुत्र की धरोहर

रामजी मिश्र मनोहर

यशस्वी पत्रकार एवं प्रखर वक्ता रामजी मिश्र मनोहर का 10 अप्रैल 1927 को रामनवमी के दिन पटना सिटी के काली स्थान में जन्म। श्री मिश्र पटना के इतिहास, सिख धर्म गुरुओं एवं पत्रकारिता के प्रमाणिक लेखक एवं वक्ता थे। आपके पिता डा. विश्वेश्वर दत्त मिश्र बिहार के प्रथम हिन्दी समाचार पत्र 'बिहार बन्धु' के अंतिम प्रकाशक (1922) थे। आप स्वयं भी विभिन्न पत्रों में महत्वपूर्ण पदों पर रहे।

रामनवमी के दिन ही प्रात: स्मरणीय पूज्य पितृश्री पंडित रामजी मिश्र 'मनोहर' का भी जन्म हुआ था तभी तो उनका नाम भी 'राम' रखा गया। वट वृक्ष की तरह विस्तृत आपका पारिवारिक जाल, देश के विभिन्न भागों में पत्रकारिता के विविध आयामों को अंजाम देते आपके पुत्र, पौत्र, दौहित्र और शुभेच्छुओं का विपुल भंडार आज आपके 93वें अवतरण दिवस पर आपको श्रद्धा और स्नेहपूर्वक स्मरण कर रहा है। आज आप होते तो ऐसा होता, आप होते तो वैसा होता, न जाने क्या-क्या होता--- जितने मुँह उतनी बात। आपको पूरे परिवार और सभी शुभेच्छुओं की ओर से शत-शत नमन।❑❑

विश्वविद्यालयों की रिसर्च कमेटियाँ ?

■ राजेन्द्र रंजन चतुर्वेदी

एक रिसर्च स्कालर पं. बनारसीदास चतुर्वेदी के पास गया, बोला – मुझे आगरा–विश्वविद्यालय की पीएच.डी. उपाधि के लिए शोध करनी है, आप कोई विषय बताइएगा। उन्होंने सहज भाव से कहा – बहुत अच्छी बात है, आप आचार्य वासुदेवशरण अग्रवाल पर रिसर्च करिए।

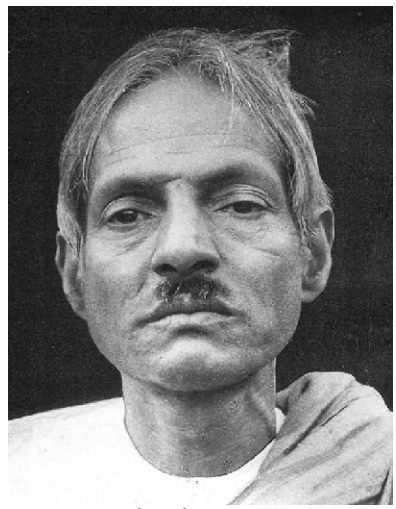

आचार्य वासुदेवशरण अग्रवाल

उसने सिनाप्सिस दाखिल कर दी।

कई महीने के बाद जब रिसर्च कमेटी बैठी तो उसने विषय को खारिज कर दिया।

बेचारे को युनिवर्सिटी से उत्तर मिला – वासुदेवशरण अग्रवाल का साहित्य इस स्तर का नहीं है कि उस पर पीएच.डी. के लिए रिसर्च की जरूरत हो।

शोधार्थी के मन पर तो रिसर्च कमेटी का आतंक होता है, न जाने कितने बड़े होते होंगे ये लोग ?

किन्तु जब यह बात पं. बनारसीदास चतुर्वेदी के पास पहुँची तब वे बड़े हँसे, उन्होंने अमर उजाला में तो लिखा ही, आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी को पत्र लिखा कि यह स्तर है विश्वविद्यालयों की इन रिसर्च कमेटियों का ? आश्चर्य है कि कमेटी के किसी सदस्य प्रोफेसर ने आचार्य वासुदेवशरण अग्रवाल को नहीं पढ़ा ? सब के सब कोरे हैं ? ये लोग किसी तरह नौकरी पा गए, अब अध्ययन का क्या मतलब ?

ब्रजभारती में जोरदार टिप्पणी छपी, अखबारों में कमेटी की भद्द पिटी, तब दोबारा वही सिनाप्सिस दाखिल हुई, फिर अबकी बार मंजूर हो गई।

यह विवरण बाबू वृन्दावनदास जी के जमाने की ब्रजभारती की फाइलों में देखा जा सकता है!

इस घटना के पीछे तो पं. बनारसीदास चतुर्वेदी थे, किन्तु सामान्यतया क्या होता है, इसकी कल्पना के लिए यह एक घटना बहुत कुछ कह देती है! ❑❑

साहित्यिक प्रयोगों की पाठशाला

'वीणा' ने समय के साथ किए कई बड़े बदलाव

■ डा. सोनाली नरगुन्दे, डा. मनीष काले

पत्रिकाएँ वास्तव में विचारों का सैलाब है। पत्रिकाएँ अनूठी होती है। अपनी भौतिक उपस्थिति के बावजूद वे विचारों की एक ऐसी निधि को अपने भीतर सँजोए होती हैं, जो अभौतिक है, निर्गुण है, जिसे तराजू पर तौला और फीतों में मापा नहीं जा सकता है। इसके बावजूद दुनिया की कोई मीनार इतनी बुलंद नहीं हो सकती है, जितना पत्रिकाओं के विचार होते हैं। दुनिया का कोई सागर इतना गहरा नहीं हो सकता है, जितने गहरे पत्रिकाओं के विचार होते हैं। मामूली से कागज पर अंकित चंद शब्द कितने ताकतवर हो सकते हैं, मनुष्यता का इतिहास इसका साक्षी रहा है। जब तक पत्रिकाएँ सुरक्षित हैं, उसमें दर्ज किसी व्यक्ति के विचारों को मारा नहीं जा सकता है। पत्रिकाएँ हमारा स्वतंत्र व्यक्तित्व बनाती हैं अपने विचारों से। पत्रिकाओं की मूल चेतना सामाजिक है। इनका लक्ष्य समाज तक जानकारी पहुँचाने के साथ ही जागरूकता फैलाना है। लोगों को विचारोत्तेजक बनाना है ताकि समाज में अच्छा परिवर्तन लाया जा सके। आज भारत में ऐसी कई पत्रिकाएँ है जो विचारों के माध्यम से समाज का सजृन कर अपना राष्ट्र धर्म निभा रही है, जिसमें साहित्यिक पत्रिका 'वीणा' का नाम भी आता है। खास बात यह है कि 93 साल के अपने सफर में वीणा लगातार पाठकों की पसंद बनी रही। इसका बड़ा कारण समय के साथ चलना भी है। वीणा ने अपने स्वरूप में बड़े बदलाव किए, जिसके कारण वह आज जीवित पत्रिका बनी हुई है। इन बीते सालों में हिन्दी साहित्य और भाषा की अनेक पत्रिकाओं ने जन्म लिया लेकिन असमय ही काल में समा गईं। मगर वीणा अबाध रही।

29 नवंबर 1927 को श्री मध्यभारत हिंदी साहित्य समिति, इन्दौर ने इसकी शुरुआत की। हिन्दी भाषा और साहित्य को समृद्ध करना ही वीणा का उद्देश्य रहा है। वीणा की विषय-वस्तु हिन्दी साहित्य ही रही है। शताब्दी की ओर अग्रसर हो रही वीणा के लिए यह भी महत्वपूर्ण है कि इसको मूर्धन्य साहित्यकार सूर्यकांत त्रिपाठी निराला, महादेवी वर्मा, सुमित्रानंदन पंत, प्रेमचंद, रवीन्द्रनाथ टैगोर, शिवमंगल सिंह सुमन, कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी जैसे साहित्यकारों का रचनात्मक सहयोग मिला था। इंदौर के सेठ हुकुमचंद कासलीवाल, श्रीमंत महाराज तुकोजीराव होलकर, वरिष्ठ साहित्यकार सरयूप्रसाद तिवारी, प्रोफेसर कमलाशंकर मिश्र, सरदार माधवराव किवे, पंडित गिरधर शर्मा जैसे कुछ साहित्य प्रेमियों और मनीषियों ने मिलकर एक पुस्तकालय की स्थापना की, जिसका उद्देश्य साहित्य को बढ़ावा देना था। पुस्तकालय की

सफलता के बाद इन्हीं चुनिंदा साहित्यकारों और मनीषियों ने ही एक समिति के माध्यम से हिन्दी को आगे बढ़ाने का संकल्प लिया। सन 1910 में इसे मूर्तरूप मिला और समिति का नाम रखा गया श्री मध्यभारत हिन्दी साहित्य समिति। वीणा इसी समिति की देन है।

राष्ट्रपिता गांधी का सपना

समिति हिन्दी भाषा और साहित्य को बढ़ाने की दिशा में काम कर ही रही थी। इसी बीच 1918 में राष्ट्रपिता महात्मा गांधी का इन्दौर में आना हुआ। यह गांधीजी की पहली इन्दौर यात्रा थी। उन्होंने क्षेत्र में हिन्दी की जन-जन तक पहुँच को देखते हुए प्रसन्नता जाहिर की थी। साथ ही हिन्दी के प्रचार-प्रसार के लिए हर स्तर पर काम करने और छोटे-छोटे कस्बों तक हिन्दी को पहुँचाने की बात पर जोर दिया था। उनका यह भी कहना था कि हिन्दी के प्रचार-प्रसार से ही देश की एकता को मजबूत किया जा सकता है। इसके लिए श्री मध्यभारत हिन्दी साहित्य समिति का भवन बनाने की बात गांधीजी ने कही, जिसे अगले ही दिन मूर्तरूप दे दिया गया। इसका शिलान्यास गांधीजी के हाथों ही किया गया। राष्ट्रपिता का हिन्दी के संवर्धन के लिए देखे गए सपने से ही वीणा का जन्म हुआ। समिति सदस्यों के मन में एक साहित्यिक पत्रिका प्रकाशित करने का विचार आया। हिन्दी प्रेमियों और मनीषियों की राय के बाद एक साहित्यिक पत्रिका का प्रकाशन करने का निर्णय लिया गया। 29 नवंबर 1927 को वीणा का पहला अंक प्रकाशित हुआ। सन 1935 में गांधीजी दोबारा इन्दौर आए और उन्होंने समिति के भवन से ही हिन्दी को राष्ट्रभाषा का दर्जा देने की घोषणा की और वीणा को जमकर सराहा।

वीणा में हिन्दी साहित्य की विधाओं जैसे कविता, कहानी, आलेख, लघु कविता और शोध का प्रकाशन ही किया जाता है। ऐसी सामग्री को प्रमुखता दी जाती है जो बौद्धिक वर्ग के लिए हो और साहित्य के रंग में रंगी हुई हो। ऐसे समय में जब साहित्यिक पत्रिकाओं पर मंडराते काले बादल उन्हें असमय ही काल का ग्रास बना रहे थे, वीणा अपनी गुणवत्ता और बदलाव के दम पर पत्रकारिता की नई परिभाषा गढ़ रही थी। समय के साथ ही पाठकों की रुचि में भी बदलाव आया लेकिन साहित्यिक पत्रिकाओं ने अपनी सामग्री में बदलाव नहीं किया और कुछ ही समय में बंद हो गई। वीणा इसका अपवाद रही, जिसने खुद को समय और पाठकों की कसौटी पर कसा और खुद को साबित भी किया। वीणा के पहले सम्पादक पंडित अम्बिकाप्रसाद त्रिपाठी थे, जिन्होंने साहित्य को गाँव, कृषि, वाणिज्य, शिक्षा आदि के केंद्र में रखकर सामग्री का प्रकाशन किया। इसके बाद पंडित कालिकाप्रसाद दीक्षित, रामभरोसे तिवारी, पंडित कमलाशंकर मिश्र, शांतिप्रिय द्विवेदी, प्रयाग नारायण संगम, चंद्रारानी सिंह, रामबहादुर, सुदर्शन हरिराम पंडित, रामचंद्र श्रीवास्तव, परमेश्वरदत्त शर्मा, प्रोफेसर रवणीर सक्सेना, मोहनलाल उपाध्याय, अजित प्रसाद जैन, भालचंद्र जोशी जैसे मनीषियों ने वीणा का सम्पादन किया। इस दौर में वीणा अपने मूल पहचान यानी उच्च स्तरीय साहित्य सामग्री के साथ ही प्रकाशित होता रहा। सन 1968 में डा. शिवमंगल सिंह सुमन इसके सम्पादक बने। डा. सिंह के सम्पादन में वीणा ने नई पहचान कायम की। इस दौर में वीणा में भाषा, साहित्य, सामाजिक विमर्श, आलोचना तय विमर्श की दृष्टि से बदलाव जरूर नजर आया। पाठकों ने इसे पंसद भी किया।

सन 1972 में सम्पादक का जिम्मा डा. श्यामसुंदर व्यासजी के पास आया। सन 2007 तक व्यासजी सम्पादक रहे, जिन्होंने कोई बड़ा बदलाव तो नहीं किया लेकिन भाषा की मजबूती पर जोर दिया गया। व्यासजी इसमें सफल भी हुए। व्यासजी के सम्पादन में ही वीणा के कई विभिन्न विषयों पर विशेषांक भी प्रकाशित हुए। सालों तक वीणा में जटिल साहित्य ही प्रकाशित होते रहे। पहला बड़ा परिवर्तन 2007 में आया जब सम्पादक

का जिम्मा डा. राजेंद्र मिश्र को सौंपा गया। यह वह समय था जब मिश्रजी ने वीणा को नए कलेवर और रंग-रूप दिया। यह पहला मौका था जब वीणा को आधुनिक समय की जरूरतों के अनुरूप ढाला गया। मिश्रजी ने सामग्री में वैचारिक विमर्श के लिए पृष्ठभूमि तैयार की। मिश्रजी ने अपनी गंभीर लेखनशैली और कुशल सम्पादन से वीणा को एक नई पहचान दी। वीणा में बड़ा बदलाव नवम्बर 2016 में आया जब सम्पादक की जिम्मेदारी राकेश शर्मा के कंधों पर आयी। श्री शर्मा के सामने वीणा को जीवित रखने के साथ ही उसे नए स्वरूप में लाने और नए पाठकों को बनाने की चुनौती थी। इसी को ध्यान में रखते हुए श्री शर्मा ने वीणा में बदलाव किए, जो पाठकों को पसंद भी आए।

पत्रिका की रीढ़ माने जाने वाली सम्पादकीय में बड़ा बदलाव आया। सम्पादकीय अब विषय वस्तु केंद्रित होने के साथ ही विचारप्रधान और समीक्षात्मक हो गई। यानी किसी एक विषय को केंद्रित कर सम्पादकीय लिखा जाने लगा और उसमें विचारों की प्रधानता होने लगी। वीणा एक साहित्यिक पत्रिका होने के कारण सम्पादकीय के विषयों का केंद्र साहित्य ही है, जो वीणा की मूल आत्मा भी है। सम्पादकीय की प्रस्तुति और भाषा में भी सरलता नजर आने लगी। हिन्दी के कठिन शब्दों के जगह आम आदमी को समझ में आने वाले शब्दों ने ले ली, जिसके कारण इसकी पाठक संख्या में इजाफा हुआ। इसका परिणाम यह हुआ वीणा की जो सम्पादकीय साहित्यिकारों तक सीमित थी, वह आम आदमी की समझ की सीमा में आने लगी। नए पाठकों से जुड़ने का यह एक बड़ा कदम था। एक बानगी – ''चिंतकों ने समय को एक शाश्वत सत्ता माना है। इस तरह यह अबाध और अखण्ड है। मनुष्य ने अपने जीवन को सहज और सरल ढंग से संचालित करने के लिए इसे विभाजित कर लिया है। अगर ऐसा न किया जाता तो जीवन व्यापार चलाने में कठिनाइयाँ आती। भूत, भविष्य और वर्तमान में समय को बाँटकर मनुष्य ने जीवन के लिए आवश्यक उर्जा लेने की भी कोशिश की है। इस उद्यम में वह बहुत हद तक सफल भी रहा है। यह सच है कि अंकों की गणना से न तो समय बदलता है न ही जीवन की वास्तविकताएँ, फिर भी गणना का महत्व तो है ही। इस संदर्भ में भारतीय लोगों का समय के बदलने का भाव अधिक सार्थक प्रतीत होता है, क्योंकि हमने ऋतु परिवर्तन के साथ समय के बदलाव को अंगीकृत किया है। शायद इसीलिए पुरखों ने समय को चक्र कहा है और चक्रावत समय की अवधारणा हमारी मनीषा का हिस्सा बनी है। अन्य संस्कृतियों के अनुयायियों से यह अवधारणा कदाचित भिन्न है। प्रकृति जब स्वयं को परिवर्तित कर रही हो, इसे ही ऋतु परिवर्तन के रूप में पुरखे मानते रहे हैं। इसी आधार पर भारतीय लोगों ने चैत्र शुक्ल प्रतिपदा को नववर्ष के शुभारम्भ की तिथि माना। 31 दिसम्बर, के अगले दिन नए वर्ष का शुभारम्भ मात्र एक अंक गणित के आधार पर परिवर्तन कर लेना भर है, क्योंकि इन तारीखों के बीच 24 घंटे के भीतर न तो प्रकृति बदलती है और न ही जीवन का कोई आयाम। फिर भी इस गणना के आधार पर हम स्वयं को नई उर्जा के साथ भविष्य के लिए स्वयं को समर्पित करते हैं और प्रतिबद्धता के साथ जीवन के लिए नव आयामों का निर्धारण करते हैं।''

पूर्व की सम्पादकीय की बात करें तो उसमें विषय वस्तु और विचारों का अभाव था। सम्पादकीय व्याख्यात्मक थी, लेकिन विचारप्रधान नहीं थी, जो किसी भी सम्पादकीय की पहचान हुआ करता है। खास बात यह थी कि समारोह, गतिविधियों, आयोजनों के समाचारों को भी सम्पादकीय में शामिल किया जाता था। इतना ही नहीं किसी खास व्यक्ति से साक्षात्कार भी सम्पादकीय का हिस्सा हो सकता था। यानी सम्पादकीय का कोई स्थायी स्वरूप नहीं था। आँकड़ों और तथ्यों की अधिकता थी, लेकिन विचार गायब थे। सम्पादकीय की भाषा जटिल थी। ऐसे कठिन शब्दों का प्रयोग किया जाता था

जिनके अर्थ समझना आम आदमी के बस की बात नहीं थी। प्रस्तुति भी पाइंट में की जाती थी। एक बानगी – ''यह एक तरह से निष्फल दान होता है। स्मृति शास्त्रों में इसे गर्हित माना गया है। इसके अन्तर्गत (1) पतित (ब्याज) आदि पर सौदा करने वाला, (2) दूसरे का छीनकर उपभोग करने वाला, (3) चोर, (4) शिक्षा के नाम पर ठगी करने वाला, (5) कृतघ्न, (6) सामर्थ्य होते हुए याचना करने वाला, (7) ज्ञान का व्यापारी, (8) सर्प पकड़ने वाला, (9) लम्पट, (10) परस्त्रीगामी, (11) धूर्त, (12) क्रूर, (13) निंदित, (14) विधिहीन यत्रकर्ता, (15) अपने ही परिवार के लोगों को देने वाला, (16) क्रोधी, (17) हिंसा करने वाला आदि को दिया हुआ दान सम्मिलित है। यह दान वैसा ही है जैसे अग्नि की अपेक्षा राख में घी डालना, जिससे कोई भी प्रलोभन सिद्ध नहीं हो सकता। वस्तुत: बिडालव्रती (बिल्ली जैसी वृत्ति वाला) तथा बकव्रती (बगुले जैसे वृत्ति वाला) को दान देना निषिद्ध माना गया है।''

वीणा की सामग्री में एक बड़ा बदलाव आलेखों को लेकर किया गया। आलेख इसमें पहले से ही प्रकाशित होते थे, लेकिन उनकी संख्या कम थी। पाठकों की रुचि को देखते हुए इसमें आलेखों की संख्या को बढ़ाया गया। वर्तमान में 18-19 आलेख प्रकाशित होते हैं। साहित्यिक पत्रिका होने के कारण कविताओं और कहानियों को प्रकाशित करने में प्रधानता दी जाती थी, लेकिन समय के साथ इसमें आलेखों का महत्व बढ़ा। आलेखों की संख्या बढ़ाने का निर्णय पाठकों को भी पसंद आ रहा है, जिसके कारण वीणा की प्रसार संख्या में बढ़ोतरी भी हो रही है। साथ ही आलेख के विषयों को लेकर भी बदलाव हुए है। पूर्व में धर्म, साहित्य और संस्कृति केंद्रित विषय ही आलेख में लिए जाते थे। एक बानगी – ''बीसवीं शताब्दी में अध्यात्म के क्षेत्र में मौलिक प्रयोग करने वालों में संत विनोबा का सर्वोपरि है। महात्मा गांधी ने आध्यात्मिक मूल्यों को जंगलों से निकालकर और पहाड़ों से उतारकर सामाजिक जीवन में प्रवेश कराने के लिए समाज के सामने खुद को आदर्श रूप में प्रस्तुत किया, वहीं विनोबा भावे ने जीवन मूल्य और सिद्धांतों को व्यावहारिक रूप देने के लिए भूदान आंदोलन का आवलंबन लिया। संत विनोबा ने अपना पूरा जीवन दिलों को जोड़ने में और जीवन शुद्धि के लिए समर्पित किया। समाज में व्याप्त अनेक समस्याओं को अहिंसा के धरातल पर रहकर सत्य, प्रेम और करुणा से कैसे हल किया जा सकता है, उसकी युक्ति विनोबा ने बतायी है। एक ओर तो जहाँ संत विनोबा भावे ने सभी धर्मग्रंथों का सार निकालकर समाज के सामने प्रस्तुत किया, वहीं दूसरी ओर पुराने शब्दों में नए अर्थ भरने का काम भी किया। इसलिए उन्हें शब्द ब्रह्मा का साधक भी कहा जाता है।'' भगवद्गीता के बारे में उनका कहना है कि ''वह पुराने शास्त्रीय शब्दों का नए अर्थ में प्रयुक्त करने की आदी है। पुराने शब्दों पर नये अर्थ की कलम लगाना विचार क्रांति की अहिंसक प्रक्रिया है। इसी से गीता तरोताजा बनी हुई है।''

आलेखों के बारे में बात करें तो वर्तमान में विषय वस्तु का दायरा बढ़ाते हुए व्यक्ति विशेष, मुद्दों को भी विषय के रूप में शामिल किया गया। आलेखों की लेखनी और प्रस्तुति आकर्षक है, जो पाठकों को बाँधे रखती है। एक बानगी – ''संगीत एवं नृत्य के क्षेत्र में मणिपुर समृद्ध रहा है। यहाँ दो प्रकार के नृत्य विशेष रूप में मिलते हैं – पहला शास्त्रीय नृत्य, दूसरा लोक नृत्य। रास नृत्य मणिपुरी समाज का सांस्कृतिक नृत्य है। नृत्य का विकास ईश्वर की उपासना के रूप में हुआ था। हिन्दू, वैष्णव प्रसंगों पर आधारित राधा-कृष्ण के प्रेम प्रसंग पर अवलम्बित इस नृत्य का उन्नयन 18वीं शताब्दी से हुआ। विष्णु पुराण, भागवत पुराण और गीत गोविंद की रचनाओं से ली गई विषय वस्तुएँ इसमें उपयोग की जाती हैं। मणिपुरी संस्कृति का चित्र लाई हारोबा नृत्य में दिखायी देता है। इसमें सृष्टि की सम्पूर्ण प्रक्रिया प्रतीकात्मक ढंग

से दिखायी जाती है। यह नृत्य का प्राचीनतम रूप है जो मणिपुर में सभी शैलियों के नृत्यों का आधार है। लाई हारोबा का शाब्दिक अर्थ है देवताओं का आमोद-प्रमोद। यह नृत्य तथा गीत के एक अनुष्ठानिक अर्पण के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। मायबा और मायबी का पुजारी-पुजारिन इसके मुख्य मुख्य अनुष्ठानक होते हैं, जो सृष्टि की रचना की विषय वस्तु को पुन: अभिनीत करते हैं। नर्तक-नर्तकी के अंग विशेष वस्त्रों से ढँके रहते हैं। शालीन-पवित्र भाव और वेश जिसमें पुरुष धोती और साफा बाँधे तथा कुर्ता हने होते है जबकि स्त्रियाँ इनफि या चादर ओढ़ती है और कमर में फनक बाँधती हैं।''

पत्रिका के लेखनी की शैली रोचक थी, जो इसकी पहचान भी रही है - ''प्रकृति का विकास तत्व, रज और तम इन तीनों गुणों की साम्यता पर होता है। आत्मा या परमात्मा का साहचर्य होने पर प्रकृति क्रियाशील एवं गतिशील बनती है। आत्मा से बुद्धि, बुद्धि से अहंकार, अहंकार से मन, इन्द्रियाँ और इनसे शब्द-स्पर्श, रूप, रस तथा गंध की उत्पत्ति हुई है। इन अंतिम पाँचों से आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी जेसे पाँच तत्वों का निर्माण हुआ। इन्हीं से देह की उत्पत्ति हुई। चेतन पदार्थों में मन एवं इन्द्रियाँ होती हैं और अचेतन में केवल पंच महाभूत होते है। इन पंच महाभूतों के आनुपातिक ढंग से संघटन होने से देह का जन्म होता है। इनके विघटन से मृत्यु होती है।''

समय के साथ वीणा में कुछ बदलाव किए गए। कुछ स्तंभ जोड़े गए और कुछ को हटाया गया, जो पाठक को पसंद भी आ रहे हैं। इस लम्बे अंतराल में वीणा में जो बदलाव हुआ, वह आवरण पृष्ठ को लेकर भी था। आवरण पृष्ठ पर भी सालों तक माँ सरस्वती की वीणा वाली तस्वीर ही छपती रही। इसकी जगह अन्य रेखाचित्रों ने स्थान लिया। ये रेखाचित्र भी प्रसिद्ध रचनाकारों द्वारा ही बनाया जाते है। वीणा में एक नया कॉलम जन मंच जोड़ा गया है, जिसमें वीणा को लेकर पाठकों के पत्रों को शामिल किया जाता है। किसी भी पत्रिका के लिए अपने पाठकों की राय महत्वपूर्ण होती है, लेकिन समय के साथ पत्रिकाओं ने इसका महत्व नहीं मानते हुए इसे बंद कर दिया था या कुछ पत्रिकाओं ने इसे पत्रिका का हिस्सा ही नहीं रखा था। वीणा ने इसका महत्व समझते हुए इसको आरंभ किया, जो प्रबंधक और पाठकों को सीधे जोड़ रहा है। पत्रों के माध्यम से प्रबंधन को वीणा के बारे में पाठकों की राय भी जानने को मिलती है, जिसके आधार पर वीणा की सामग्री में बदलाव किया जाता है या फिर कमी को सुधारा जाता है। वीणा का आवरण पृष्ठ का चित्र अपने आप में कई विशेषताओं वाला होता है। इसी कारण इस चित्र को कुछ पंक्तियों में समझाया जाता है। यह प्रयोग अपने आप में अनूठा है।

वीणा एक साहित्यिक पत्रिका है, इसलिए इसके मूल आधार यानी साहित्यिक सामग्री में बदलाव नहीं किया गया। कविताओं को आज भी प्रमुखता से प्रकाशित किया जाता है, जबकि कहानियों का स्थान भी यथाचित ही रखा गया है। कहानियों में पहले भी तरह आज भी लघुकथाओं को प्रमुखता से प्रकाशित किया जाता है, जिनमें देशभर की नामी हस्तियाँ शामिल हैं। पुस्तक समीक्षा जैसे कालम आज भी स्थायी है, जिसमें सात-आठ पुस्तकों की समीक्षा दी जाती है। हालाँकि पहले की तुलना में इसे ज्यादा सारगर्भित कर दिया गया है। इसी तरह समिति समाचार पहले की ही तरह है, जिसमे समिति की गतिविधियों को प्रमुखता से प्रकाशित किया जाता है। विविध कॉलम में भी कोई बड़ा परिवर्तन नहीं किया गया है। इस कॉलम में साक्षात्कार, व्यंग्य, एकांकी, पुण्य संस्मरण, लोक संस्कृति आदि जैसी साहित्यिक विधाओं को प्रमुखता से प्रकाशित किया जाता था। वर्तमान में इन्हें अलग-अलग कॉलमों के नाम से भी प्रकाशित किया जाता है। वीणा के कुछ कॉलम बंद भी कर दिए गए हैं। साहित्य से जुड़े विषयों पर कुछ लेख सजृन नाम के कॉलम में प्रकाशित किए जाते थे, लेकिन वे

आलेख की तरह ही थे। इसी तरह साहित्य वृत्त में देशभर में चल रही साहित्यिक गतिविधियों के समाचारों को प्रकाशित किया जाता था। वीणा में बालवीणा के नाम से बच्चों के लिए भी एक कॉलम था, जो नैतिक शिक्षा का पाठ पढ़ाता था। देवपुत्र के सम्पादक श्री कृष्णकुमार अष्ठाना इसके स्तंभकार थे। इस कॉलम की एक बानगी – ''बच्चों, बात सफाई की निकली है तो एक बात और करनी है। हम घर-आँगन तो खूब झाड़-बुहार लेंगे, शरीर भी खूब अच्छा साफ कर लेंगे, लेकिन अंदर की स्वच्छता का क्या? आप कहेंगे भला, अंदर की सफाई भी होती है क्या? हाँ बच्चों, होती है। मन में कई बार झूठ बोलने, अपशब्द बोलने, लालच, बड़ों के प्रति असम्मान आदि की आदतों का कचरा एकत्रित होता रहता है। प्रयास कीजिए हमारे अंदर का यह अंधेरा इस दीवाली पर सद्गुणों के दीप जलाकर समाप्त कर सकें। आप पाएँगे कि अन्दर की यह स्वच्छता भी आपको बाहरी स्वच्छता से अधिक आनंद देगी। इस कार्य में अच्छा साहित्य आपका बहुत सहयोग करेगा। ये साहित्य झाड़ू भी है और दीपक भी। आप भीतर की स्वच्छता और प्रकाश के इस नुस्खे को जरूर आजमाइए इस दीवाली पर।''

वीणा में साहित्य का एक भी ऐसा रंग नहीं है, जो नजर नहीं आता है। ऐसा कहना गलत नहीं होगा कि वीणा वास्तव में साहित्य की सेवा कर रही है। अपनी शतकीय पारी की तरफ बढ़ते हुए वीणा ने साहित्यिक जगत में अपना नाम स्वर्णिम अक्षरों में लिख लिया है। बाजारवाद के दौर में वीणा वास्तव में एक आदर्श साहित्यिक पत्रिका की अपनी छाप को बनाए रखे हुए है, यही उसे एक सर्वोच्च स्थान पर बनाए रखती है।

डा. सोनाली नरगुन्दे, विभागाध्यक्ष, पत्रकारिता एवं जनसंचार अध्ययनशाला, देअविवि, इंदौर
डा. मनीष काले, पत्रकार, अतिथि व्याख्याता, पत्रकारिता एवं जनसंचार अध्ययनशाला, देअविवि, इंदौर
(Email : manish1kale@gmail.com)

अखबार मरेंगे तो लोकतंत्र बचेगा?

■ **अरुण कुमार त्रिपाठी**

हम गाजियाबाद की पत्रकारों की एक सोसायटी में रहते हैं। वहाँ कई बड़े संपादकों और पत्रकारों (अपन के अलावा) के आवास हैं। इस सोसायटी में एक बड़े पत्र प्रतिष्ठान के ही पूर्व कर्मचारी अखबार सप्लाई करते हैं। वे बताते हैं कि कोरोना से पहले लोग तीन-तीन अखबार लेते थे। अब कुछ ने अखबार एकदम बंद कर दिया है और कुछ ने घर में लड़ाई झगड़े के बाद एक अखबार पर समझौता किया है। एक दिन पहले एक बड़े अखबार के बड़े पत्रकार ने बताया कि उनका वेतन एक तिहाई काट दिया गया है। यूरोप की फरलो (छुट्टी पर भेज दिए जाने) वाली कहानी यहाँ भी दोहराई जा रही है।

यह धीरे-धीरे मरते हुए अखबारों की एक अवस्था है जिसे कोरोना महामारी और उससे उपजी मंदी ने तेज कर दिया है। पूरी दुनिया में इस बात पर चर्चा हो रही है कि क्या कोरोना के बाद अखबार बच पाएँगे या पूरी तरह समाप्त हो जाएँगे? हिन्दी हृदय प्रदेशों में अखबारों की धूम पर 'हेडलाइन्स फ्राम हार्टलैंड' जैसी किताब लिखने वाली शेवंती नाइनन ने द टेलीग्राफ में बहुत सारी जानकारियों से भरा हुआ लेख लिख कर बताया है कि किस तरह से पूरी दुनिया में प्रिंट मीडिया संकट में है। इस टिप्पणीकार को इंतजार है आस्ट्रेलिया के मीडिया विशेषज्ञ राबिन जैफ्री के किसी लेख का, जिन्होंने 'इंडियाज न्यूज पेपर्स रिवोल्यूशन' जैसी चर्चित किताब लिखी थी। जैफ्री ने नब्बे

के दशक में भारत में उदारीकरण और वैश्वीकरण रूपी पूँजीवाद के विकास के साथ ही अखबार उद्योग की क्रांति देखी थी। जैफ्री भी बेनेडिक्ट एंडरसन की 'इमैजिन्ड कम्युनिटी' वाली सोच को भारत में लागू करते हैं और देखते हैं कि किस तरह से इन नए क्षेत्रीय और राष्ट्रीय अखबारों के विकास के साथ एक नए किस्म का लोकतंत्र और राष्ट्रवाद विकसित हुआ है। लेकिन आज वे अखबार लगातार दुबले होते जा रहे हैं। टाइम्स आफ इंडिया के विकास पर न्यूयार्कर में 'सिटीजन्स जैन' जैसा शोधपरक लेख लिखने वाले केन औलेटा भी शायद यह देख कर हैरान होंगे कि इस बड़े पत्र से उनका स्थानीय पुलआउट गायब हो गया है। जबकि वही उनके प्रसार का मुख्य हथियार था।

अखबारों के इस संकट के बारे में द गार्जियन टिप्पणी करते हुए लिखता है, ''प्रिंट मीडिया दो दशक से बंद होने की आशंका से ग्रसित था। आज कोरोना ने पूरे ब्रिटेन में 380 साल पुराने अखबार उद्योग को नष्ट कर दिया है। लगता नहीं कि अब अखबार बच पाएँगे।'' अखबारों के मौजूदा संकट के पीछे एक प्रमुख कारण विज्ञापनों का बंद होते जाना और दूसरा एवं तात्कालिक कारण उसके कागज और स्याही पर लगा संक्रमण का आरोप है। पहला कारण लंबे समय से चल रहा था और दूसरे कारण ने उसके साथ मिलकर कोढ़ में खाज पैदा कर दी है। हालाँकि मौजूदा स्थिति आने में प्रौद्योगिकी की भी बड़ी भूमिका है और डिजिटल टेक्नोलाजी धीरे-धीरे अखबारों को कागज और स्याही की दुनिया से निकालकर साइबर दुनिया में ढकेल रही थी। इस बीच गूगल और फेसबुक जैसे डिजिटल मंचों ने अखबारों की सामग्री का मुफ्त में इस्तेमाल करके उनके प्रति लोगों का आकर्षण भी कम कर दिया है। इसीलिए कहा जा रहा है कि जिस गूगल ने अखबारों को मारा है अब उसे ही उन्हें जीवनदान देने के लिए मदद देनी चाहिए। वे कुछ हद तक तैयार भी हैं क्योंकि नई सामग्री गूगल पैदा नहीं कर रहा। लेकिन संक्रमण का आरोप उसके पाठकों के जीवन और अस्तित्व से जुड़ा है और उसे मिटा पाना आसान नहीं है। संक्रमण के आरोप को सैनेटाइज करने के लिए अखबार उद्योग ने एक साथ मिलकर बहुत सारे जतन किए। पहली बार सभी अखबार समूहों ने मिलकर पूरे-पूरे पेज के विज्ञापन दिए। जाहिर सी बात है कि इस विज्ञापन से कोई कमाई नहीं हुई होगी। उसमें अखबार को व्यक्ति के चेहरे पर मास्क की तरह लगाकर कहा गया था कि अगर झूठी खबरों के संक्रमण से बचना है तो अखबारों के मास्क का सहारा लीजिए। उसी के साथ यह भी कहा गया था कि अखबार की छपाई पूरी तरह मशीनीकृत है और उसमें किसी का हाथ नहीं लगता। यहाँ तक कि बिक्री केंद्रों पर भी दस्ताने लगाकर ही हाकर अखबार उठाते हैं। भारत के सूचना और प्रसारण मंत्री प्रकाश जावडेकर ने ट्विट करके कहा - अफवाहों पर विश्वास न करें। समाचार पढ़ने से # CORONA नहीं होता। समाचार पत्र पढ़ने और कोई भी काम करने के बाद साबुन से हाथ धोना है। समाचार पत्रों से हमें सही खबरें मिलती हैं। देश के बड़े वकीलों से भी बयान दिलवाए गए कि अखबार का प्रसार रोकना गैर कानूनी है। डाक्टरों की भी राय छापी गई कि अखबार निरापद हैं। डब्ल्यूएचओ की भी टिप्पणी का उल्लेख करके अखबारों को सुरक्षित सिद्ध करने का प्रयास हुआ। लेकिन लोग हैं कि अखबार को छोड़ते ही जा रहे हैं। इस बीच इंडियन न्यूजपेपर्स सोसायटी (आईएनएस) के पदाधिकारी शैलेश गुप्ता ने सूचना प्रसारण मंत्री को पत्र लिखकर अखबार उद्योग को संकट से बचाने के लिए आर्थिक

मदद की माँग की है। उनका कहना है कि सरकार विज्ञापन की दरें 50 फीसदी बढ़ा दें। न्यूजप्रिंट पर लगने वाला सीमा शुल्क पाँच फीसदी घटाएँ। न्यूज प्रिंट पर दो साल का टैक्स हाली डे घोषित करें।

भारत में की जाने वाली यह सारी तदवीरें पूरी दुनिया में चल रही हैं। लेकिन लगता नहीं कि दवा काम करने वाली है। अखबारों को कागज और स्याही से रिश्ता तोड़ना ही होगा और डिजिटल दुनिया में जाना ही होगा। इसके अलावा उनके पास कोई चारा नहीं है। अखबारों ने विज्ञापन के बूते पर अपना मूल्य काफी घटा रखा था। वे विज्ञापन से मुनाफा कमाते थे, उससे कागज, स्याही, टेक्नोलाजी और वितरण का खर्च निकलता था और कर्मचारियों को मोटी तनख्वाहें भी देते थे। इस तरह कौड़ियों के दाम में बँटने वाले अखबारों ने अपनी सामग्री के बूते पर अपनी कमाई का कोई ढाँचा नहीं बनाया था। यह विज्ञापन पर टिका परजीवी ढाँचा था जो विज्ञापन के टेलीविजन और डिजिटल की ओर खिसकते जाने से लड़खड़ाने लगा। अखबारों के इस संकट को दुनिया भर के विशेषज्ञ पहले से आते हुए देख रहे थे।

आस्ट्रेलिया के भविष्यवादी लेखक रास डाउसन ने 2011 में अखबारों के मरने की चेतावनी देते हुए पूरी दुनिया के लिए एक समय सारणी बना दी थी। उनका कहना था कि अमेरिका में 2018 में, ब्रिटेन में 2019 में, कनाडा और नार्वे में 2020 में, आस्ट्रेलिया में 2022 में अखबार मर जाएँगे। हाँ, फ्रांस में सरकार की मदद से 2029 तक और जर्मनी 2030 तक अखबार रह सकते हैं। जहाँ तक एशिया और अफ्रीका के विकासशील देशों की बात है तो वहाँ वे कुछ और दिनों तक अखबारों का भविष्य देखते हैं। अखबारों की मृत्यु का यह टाइम टेबल कुछ विद्वानों के लिए एक बेवजह का हौवा लगता रहा है। मार्क एज ने तो 'ग्रेटली एक्जजरेटेड : द मिथ आफ डेथ आफ न्यूजपेपर्स' लिखकर इसे खारिज भी किया था। लेकिन जो चीज हम अपनी आँख के सामने देख रहे हैं उसे कैसे खारिज कर सकते हैं। अब सवाल यह है कि अखबार कैसे बचेंगे। एक माडल सरकार से आर्थिक सहायता लेकर अखबार चलाने का है। इसकी अपील करने वाले अखबार को दूसरे उद्योगों की तरह एक उद्योग मानते हैं और उन्हीं की तरह सरकार से सहायता माँग रहे हैं। उनके लिए उसमें छपने वाले शब्द निष्प्राण किस्म के केमिकल हैं। वे मानव जीवन और प्रकृति के सत्य से संवाद नहीं एक केमिकल लोचा पैदा करते हैं जो धंधे में कारगर होता है। दूसरा माडल 'सेविंग द मीडिया : क्राउड फंडिंग एंड डेमोक्रेसी' जैसी किताब लिखकर जूलिया केज ने प्रस्तुत किया है। केज का कहना है कि मीडिया ज्ञान उद्योग यानी नालेज इंडस्ट्री का हिस्सा है। लोकतंत्र के कुशल संचालन के लिए इसका रहना जरूरी है।

सवाल यह है कि सरकार से सहायता लेकर चलने वाला मीडिया किस तरह सरकार की गलत नीतियों और गलत निर्णयों पर सवाल उठाएगा और अगर नहीं उठाएगा तो उसका मकसद तो कम्युनिस्ट और तानाशाही वाले देशों की तरह सरकार की नीतियों का प्रचार बन रह जाएगा। ऐसे में या तो पार्टियों के मुखपत्र निकलेंगे या अखबार पार्टियों और सरकारों के मुखपत्र बन जाएँगे। हालाँकि काफी कुछ वैसा हो भी गया है। जहाँ तक क्राउड फंडिंग का मामला है तो वह माडल अभी तक बहुत सफल नहीं हुआ है। जूलिया इस आर्थिक ढाँचे में सरकार की सहायता को भी रखती हैं लेकिन उनकी कल्पना में वे लोकतांत्रिक देश हैं जहाँ की सरकारें सहायता देने के बाद उन संस्थानों में हस्तक्षेप नहीं करतीं। इन माडलों से अलग

तीसरा और बहुत पुराना माडल महात्मा गांधी ने प्रस्तुत करने का प्रयास किया था। उनका कहना था कि अखबार अपने ग्राहकों के खर्च से चलने चाहिए। अगर वे लोग अखबार का खर्च नहीं उठा सकते जिनके लिए अखबार निकाला जाता है तो अखबार को निकालने की जरूरत क्या है? वे अपने 'इंडियन ओपीनियन' में इसी माडल को लागू कर रहे थे और 1915 में दक्षिण अफ्रीका से चले आने के बाद भी वहाँ रह गए अपने बेटे को इसी प्रकार की सलाह दे रहे थे। इसी के साथ एक चौथा माडल रामनाथ गोयनका ने बड़े शहरों में बड़ी इमारतें खड़ी करके प्रस्तुत किया था। उनका सिद्धांत था कि चौथे खंभे की ताकत इमारत के मजबूत खंभों पर टिकी होती है (पावर आफ फोर्थ स्टेट कैन वी सेव्ड बाइ द पावर आफ रीयल इस्टेट)। यानी इमारत के एक फ्लोर पर अखबार चलेगा और बाकी किराए पर उठेंगे। किराए के पैसे से अखबार की छपाई का खर्च और कर्मचारियों का वेतन आएगा और अखबार सरकार या विज्ञापन पर कम से कम निर्भर रहेगा। लेकिन यह माडल उनके यहाँ भी टूट रहा है। एक और माडल है सहकारिता या ट्रस्ट का। उस आधार पर अभी भी कुछ अखबार निकल रहे हैं जो कम विज्ञापन में गुजारा करते हैं।

सवाल यह है कि अखबार मरेंगे तो क्या टेलीविजन और डिजिटल मीडिया उस पूरी जिम्मेदारी को उठा पाएगा जो लोकतंत्र के जीवन के लिए जरूरी है। शायद उठा भी रहे हैं या नहीं उठा पा रहे हैं। उनकी चीख चिल्लाहट और चाटुकारिता देखकर तो लगता नहीं। वे ज्यादा से ज्यादा लोकतांत्रिक प्रोपेगंडा या मनोरंजन उद्योग के हिस्से हैं। टीवी चैनलों की दिक्कत यह है कि वहाँ खबरों के विस्तार या विचार के लिए जगह है ही नहीं। बड़े से बड़े टीवी एंकरों की विचार क्षमता सीमित है और वे विचार पर जाने लगेंगे तो कोई चैनल नाम की नौटंकी को देखेगा ही नहीं। आज से सात साल पहले द इकानमिस्ट ने टाम स्टैंडेज द्वारा लिखी कहानी 'बुलेटिन्स फ्राम फ्यूचर' को कवर स्टोरी बनाया था। उसमें इस बात का वर्णन था कि आने वाले समय में समाचारों की दुनिया किस प्रकार की होगी। उस स्टोरी में अखबारों के मरने के साथ यह भविष्यवाणी की गई थी कि समाचारों की पारिस्थितिकी पूरी तौर पर बदल रही है। खबरों की संरचना धीरे-धीरे मास मीडिया के आगमन से पहले वाली स्थिति में पहुँच जाएगी। किसी खबर पर बड़े संस्थानों की मोनोपोली रह नहीं जाएगी। हर कोई खबर दाता होगा और हर कोई उपभोक्ता। बहुत सारी चीजें गप की शक्ल में होंगी। गप से ही खबर निकलेगी और खबर बाद में गप बन जाएगी।

निश्चित तौर पर आने वाला समय बड़े बदलाव का है और यह बदलाव लोकतंत्र को भी बदलेगा और हमारे ज्ञान के संसार को भी। बदलाव चल रहा था लेकिन कोरोना ने उसे बहुत तेज कर दिया है। लेनिन ने कहा था कि कभी ऐसे दशक गुजरते हैं जब कुछ नहीं होता और कभी कुछ हफ्तों में ही कई दशक गुजर जाते हैं। इसी बात को एक साल पहले भाषाविद और नृतत्वशास्त्री गणेश देवी ने इस स्तंभकार से एक इंटरव्यू में कहा था कि अब दुनिया बहुत तेज हो गई है और पता नहीं किस कोने से कौन-सी बयार बहे और सब कुछ बदल जाए। संभव है आने वाले समय में अखबार डिजिटल के रूप में नया जन्म लें और अपनी विरासत को बचाए रखें और लोकतंत्र को भी नया रूप दे, क्योंकि आखिर में लोकतंत्र और तानाशाही कुछ और नहीं सिर्फ डाटा प्रणाली की अलग अलग वितरण व्यवस्था ही तो है। लेकिन उसके पहले बहुत कुछ घटित होना है।

(Email : tripathiarunk@gmail.com)

अखबार का मेडिकल बुलेटिन

■ विजय मनोहर तिवारी

अपने बंद घरों के भीतर बाहर की दूर तक फैली अंतहीन दुनिया के कोने-कोने की खबरों के लिए सबसे बाद में अखबार आ गया है। बीच में दस दिन घर आया नहीं तो दो-तीन दिन बाद इंतजार करना भी बंद कर दिया। एक दिन आ गया तो उसे उठाकर पलटने में कोई उत्साह नहीं था। कुछ भी ऐसा नहीं था, जो उन दस दिनों में छूट गया लगा हो। जब अखबार आया तो कुपोषित और बीमार हालत में। उसके चेहरे की रौनक उतरी हुई थी।

बुरी खबरें आठ कॉलम में पहले भी खूब छपी थीं। लेकिन वह बहुत तंदुरुस्त होता था। बीस-बाइस रंगीन पेजों पर दुनिया भर की खबरें। देश भर की खबरें। प्रदेश की खबरें। शहर की खबरें। सिनेमा, बिजनेस, स्पोर्ट्स के पन्ने। युवाओं के लिए अलग। महिलाओं के लिए अलग। रंगीन तस्वीरों और शानदार सुर्खियों से सजे-धजे अखबार। परिचितों की बायलाइन। सब कुछ अत्यंत आकर्षक। सबको जोड़ने वाला। और हर पृष्ठ पर विज्ञापन जिनमें बेशकीमती जेवर की तरह सुशोभित होते थे। किसी नई नवेली दुल्हन की तरह आभूषणों और सौंदर्य प्रसाधनों से सुसज्जित और सुगंधित।

विज्ञापनों के आभूषण झट से उतर गए हैं। चेहरे पर कोई क्रीम तक नहीं लगी। सूनी माँग है। मर्सडीज के नए मॉडल पहियों सहित नदारद हैं। सदी के महानायक कपड़े धोने के साबुन सहित अखबार की फरारी टीवी में काट रहे हैं या अपने घर के पेड़ पर टॉर्च चमका रहे हैं। अखबार में अक्षय कुमार ने कब से नहीं कहा - फिट है बॉस ? सितारों की रोशनी डरी-सहमी है। सब कुछ बेरौनक हो गया है। कितने नेताओं के जन्मदिन निकल गए। आधे-पूरे पेजों पर अब कोई नहीं बता रहा कि वे युवा हृदय सम्राट कहाँ हैं, जननायक कहाँ दम साधकर मोमबत्तियाँ बुझा रहे हैं और उनके जोशीले अनुयायी किस कंदरा में हैं। एक पार्टी की राजमाता ने तो सरकार को परामर्श दे दिया है कि सरकारी विज्ञापन भी बंद कर दिए जाएँ। यह बच्चों के हाथ से बचे-खुचे मिड-डे मील को छीनने जैसी बात है। इससे पहले कब ऐसा हुआ ?

शहरों में 50 फीसदी ही कॉपियाँ पाठकों तक जा पा रही हैं। ट्रेनों और बसों से जुड़ने वाले गंतव्यों पर तो तीन हफ्ते होने को हैं, जब बंडल उतरे थे। कहने को ये सैटेलाइट एडिशंस हैं। अब नीरव आकाश में भ्रमण करते मौन सैटेलाइट से ही बिना किसी के एडिशन के सहारे, घर बैठे मोबाइल पर ही खबरें पहुँच रही हैं। चुटकुले आ रहे हैं। शेर-शायरी भी। पुराने गानों की क्लिप। किसी महात्मा के प्रवचन। इतिहास के अनजाने पन्ने। एलबम में दशकों से भूले-बिसरे फोटो निकल रहे हैं और व्हाट्सएप पर चौंका रहे हैं - अरे ये हैप्पी की शादी का फोटो ! अखबार में यह सब कहाँ ?

सुबह की चाय अखबार के बिना गले उतरने की आदत पक्की होने लगी है। दादा-दादी भी व्हाट्सएप पर आई लिंक में लगे हैं और ब्रेकिंग न्यूज घर वालों को या फोन पर दूर बैठे अपने बच्चों को बता रहे हैं। क्या अखबार अप्रासंगिक हो जाएँगे ? डिजिटल मीडिया का खौफ प्रिंट को पहले ही मुश्किल में डाले हुए था, क्योंकि नई पीढ़ी के पास इतना समय नहीं है कि वे इत्मीनान से बैठकर पन्ने पलटें और चाय की चुस्कियाँ लें।

उनके पास सेकण्ड्स हैं। धैर्य तो बिल्कुल नहीं हैं। किसी भी लोक में जाकर कोई भी समाचार तत्काल प्राप्त करने का मोबाइल वरदान है उन्हें। वे अखबार पर निर्भर नहीं हैं। अब दादा-नाना की उम्र के लोग भी इस वरदान से बेहतर जुड़ गए हैं।

24 घंटा अपने घरों में बंद रहकर हमारा बाहरी दुनिया से हल पल की जानकारी तत्काल मिलने लायक सुविधाजनक जुड़ाव अखबार के बिना भी बना हुआ है। बाहरी दुनिया में क्या चल रहा है, यह जानने के लिए हमारे पास इन दिनों साधन क्या हैं? 24 घंटे के न्यूज चैनल, एक-दो नहीं, बीसियों। इंटरनेशनल, नेशनल, रीजनल और लोकल चैनल। मोबाइल फोन, जहाँ व्हाट्सएप, फेसबुक और मैसेंजर पर सूचनाओं, टिप्पणियों, तस्वीरों और वीडियो की बाढ़ आई हुई है। कहीं किसी जमाती ने अपना असली रंग दिखाया तो पता नहीं कहाँ से कहाँ होते हुए ताजे वीडियो और फोटो हमारी स्क्रीन तक आ ही जाते हैं। व्हाट्सएप पर सब किसी न किसी ग्रुप में हैं। मीडिया से संबंधित कई ग्रुप हैं, जहाँ संपादक, रिपोर्टर, अफसर, टिप्पणीकार लगातार सक्रिय हैं। शेयर कर रहे हैं। सबके फेसबुक पर अकाउंट हैं। ट्विटर पर सक्रिय हैं। चार लाइन के कटाक्ष से लेकर चार सौ शब्दों के विश्लेषण तक हर तरह का सामान सजा है। खबर के साथ कमेंट भी तत्काल।

दिन भर मौत के तांडव के समाचार देख-देखकर जब माथा दुखने लगे तो राहत के लिए दूसरे चैनल हैं। खासकर दूरदर्शन के चैनल, जहाँ इसके पहले कभी लोग इतनी देर तक नहीं ठहरे होंगे। कोरोना प्रसंग में यही अकेला कोना है, जहाँ रौनक बढ़ी है। अब दोनों समय रामायण, महाभारत, बुनियाद और चाणक्य जैसे धारावाहिक भारतीय दर्शकों को बाँधे हुए हैं। बाहर अदृश्य मौत के भयावह शोर में राम और कृष्ण के संवाद घरों में गूँज रहे हैं। उपनिषद के सूत्र सुनाई दे रहे हैं। किंगमेकर चाणक्य से जनता रूबरू है। सुबह अखबार की प्रतीक्षा अब पहले जैसी नहीं रही है। आ गया है इसलिए पलट लीजिए। कहीं कुछ भी डिफरेंशिएटर नहीं है। कोई टेक अवे नहीं। कोई नेक्स्ट लेवल नहीं। मौत-सी बरसती खबरों के बीच आइडिएशन शून्य होना स्वभाविक है। कोई क्या एक्सक्लुसिव और ब्रेकिंग ला सकता है? कुदरत ने ब्रेक कर दिया है, जो उसे करना था।

अखबारों में होता क्या था? अखबार के पन्नों पर शहर धड़कता था। शहर की ही धड़कन बंद है तो अखबार तो बुझे होंगे ही। अब पार्टी दफ्तरों में प्रवक्ता किसी का इंतजार नहीं कर रहे। ब्यूरोक्रेट कोरोना पॉजिटिव हैं। जाए कोई पेज थ्री के लिए उनके सपरिवार साक्षात्कार करने और पूछे सवाल कि मैडम से पहली बार मिले थे कैसे प्रपोज किया था? आपके पसंदीदा पर्यटन स्थल कौन से हैं? पहली मूवी कब देखी थी? न्यूयार्क में बेटे से कब बात हुई थी? पाठकों के लिए क्या संदेश है?

सभागार सूने पड़े हैं। नियति अपना नाटक सारे संसार में खेल रही है। थिएटर के कलाकारों का कोई काम नहीं है। गैलरियों की दीवारों पर टंगी पेंटिंग सन्नाटे में हैं। सिनेमा हॉल ताले में हैं। अंधेरे परदे पर रोशनी का खेल बंद हो चुका है। गाना, बजाना, पार्टी, दावत, कथा, प्रवचन, भंडारा, शादी, समारोह, जलसा समेट दिए गए हैं। मॉल्स धूल खा रहे हैं। बड़े-बड़े ब्रांड्स के शोरूम बंद पड़े हैं। दुनिया की चकाचौंध बस इतनी ही है। सड़कों पर दौड़ते वाहन कहाँ समा गए। दो मरे, चार घायल जैसे स्थाई शीर्षक क्षीणकाय अखबारों से विदा हो गए हैं।

मृत्यु विराट रूप में पसर रही है। अमेरिका, इटली, ईरान दूर हो गए हैं। मौत की खबरें अपने आसपास से आने लगी हैं। हर तरह की सुर्खियाँ शाम तक छोटी-बड़ी स्क्रीन पर बरसकर थम जाती हैं। सुबह आँगन में अखबार शोकपत्र की तरह पड़े दिखते हैं। नाम देखा और तेरहवीं की तारीख। बस...

(Email : vijaye9@gmail.com)

छाया पत्रकारों की धुंधली होती छाया

■ **शिवकुमार विवेक**

सन 2019 में एक दिन फरमान आया कि जिलों में तैनात सभी फोटोग्राफरों की सेवाएँ खत्म कर दी जाएँ। अखबार में काम करने वाले ज्यादातर वरिष्ठों को इसमें कुछ भी ऐसा नहीं लगा जिसका आभास न रहा हो। लेकिन तब भी यह खराब लग रहा था। अपरिहार्य था, इसमें कोई भी संदेह नहीं था। हम पत्रकारों को हर उस वक्त में बुरा लगता रहा है जब किसी पत्रकार की नौकरी जाती रही। लेकिन शीर्ष पदों पर बैठे पत्रकारों यानी संपादकों और संपादकीय प्रबंधकों को मन मसोसकर और सिर झुकाकर इसको शिरोधार्य करना पड़ता है क्योंकि वह उस व्यवस्था से नहीं लड़ सकता या लड़कर कुछ भी बदलाव नहीं करा सकता जिसे कोई और चला रहा है और जिसमें उसका हानि-लाभ निहित है।

फोटोग्राफर जिन्हें हम अखबार की भाषा में फोटो जर्नलिस्ट मानते हैं क्योंकि वह महज सुदर्शन, मन बहलाने वाली या कला प्रदर्शनी में प्रदर्शित करने वाली फोटो नहीं खींचता बल्कि उसमें समाचारात्मक मूल्य लाने की कोशिश करता है यानी उसकी फोटो भी कोई खबर होती है। इसीलिए वह छाया-पत्रकार है, छायाकार नहीं। सो, हमारे सैकड़ों छाया पत्रकारों की नौकरी जाने वाली थी। जो खबर लिखने के काम आ सकते थे और जिनके लिए रिपोर्टर का कोई पद कहीं रिक्त था तो उसमें उन्हें समायोजित किया जा सकता था। फोटो जर्नलिस्ट की नौकरी का यह संकट समाचार पत्र संस्थानों में आर्थिक संकट की वजह से ही नहीं आया बल्कि यह संकट तकनीक के बदलाव के कारण ज्यादा आया। तकनीकी सुविधाओं में विस्तार और बदलाव हमेशा कार्य की प्रकृति में छोटे-बड़े बदलाव करता है। जब यह परिवर्तन बड़ा होता है तो काम करने का वातावरण और कार्य प्रकृति भी बदल जाती है। यह रोजगार की प्रकृति के साथ अवसरों और संभावनाओं को भी बदल डालती है। काम करने के पुराने तौर-तरीके बदल जाते हैं और नए तरीकों को लागू करना जरूरी हो जाता है। ऐसे में वे लोग अपना रोजगार कायम रख पाते हैं जो बदलावों के साथ खुद को तब्दील कर लेते हैं और जो नहीं बदल पाते वे अक्सर व्यवस्था से बाहर हो जाते हैं।

प्रिंट या समाचार पत्र उद्योग में हमने पिछले सालों में इस तरह के कई बदलावों को आते देखा। इसके साथ ही हमने हजारों लोगों को उस उद्योग से बाहर धकेलते पाया और लाखों को नई व्यवस्था में ढलते देखा। अस्सी के दशक में यंत्रालयों (प्रिंटिंग तकनीक) में बदलाव आए तो कंपोजिंग करने वालों और मशीनमैनों ने खुद को तब्दील किया। लेकिन जब कंप्यूटर लोकप्रिय हुआ तो कई कंपोजिटर बेरोजगार हो गए क्योंकि पत्रकार या अखबार में डेस्क पर काम करने वाला खुद ही अपनी खबर टाइप या कंपोज कर लेता था। इसके साथ ही प्रूफरीडर भी लुप्त होने लगा क्योंकि जो पत्रकार अपनी खबर खुद टाइप कर रहा होता है, वही उसकी रीडिंग भी करता जाता है। इस तरह आगे-पीछे दोनों प्रजातियों पर संकट आया।

हाल के संकट की वजह भी कुछ इसी तरह है। यह संकट केवल छोटे या क्षेत्रीय अखबारों में ही नहीं आया बल्कि वैश्विक है। संयुक्त राज्य अमेरिका में ही 1999 से 2015 के बीच यानी डेढ़

दशक में फोटो जर्नलिस्ट की संख्या आधी रह गई है। फोटो जर्नलिस्ट की जरूरत खत्म नहीं हुई है लेकिन हर हाथ में रखे जाने वाले मोबाइल के परिष्कृत और शक्तिशाली कैमरे ने उस आदमी, जो कैमरा लेकर रिपोर्टर के साथ-साथ दौड़ता है, की जरूरत को कम या खत्म कर दिया। यह बात ठीक है कि फोटो जर्नलिस्ट के हाथ जैसी सफाई, आँख की तीव्रता और दिमाग का संकेद्रण करना रिपोर्टिंग कर रहे पत्रकार के लिए कठिन है लेकिन अखबारी संस्थान लागत को कम करने के लिए इतना समझौता करने के लिए तैयार हैं। बड़े शहरों में यह समझौता नहीं कर रहे हैं क्योंकि वहाँ की पाठकीयता के आकार तथा स्तर को देखते हुए फोटो जर्नलिस्ट की कला की उपादेयता उन्हें समझ में आती है लेकिन छोटे शहरों में फोटो जर्नलिस्ट उनके लिए अनुपयोगी होने लगे।

एक अखबार में इस प्रक्रिया के दौरान जब संपादक ने अपने प्रबंधक से इन्हें हटाने पर सवाल पूछा तो उन्होंने प्रति प्रश्न किया था कि पिछले सात दिन के अखबार उठाकर देख लीजिए कि कितने एक्सक्लूसिव फोटो हमारे फोटो जर्नलिस्ट ने दिए हैं। उनका तर्क था कि सभी फोटो कॉमन एवं रुटीन हैं जिन्हें कोई भी रिपोर्टर खींचकर ला सकता है। यह सही है कि क्षेत्रीय अखबारों के कई फोटो ग्राफर्स खुद भी अपनी प्रासंगिकता को साबित करने में कुछ हद तक असमर्थ रहे हैं। इस बात को जाँचने के लिए एक छाया चित्रकार का यह कथन भी ध्यान में रखना होगा कि क्या दैनिक अखबारों का छाया चित्रकार रोजमर्रा की दस-बारह फोटो निकालने की व्यस्तता और कार्यसूची से स्वतंत्र है। उसे दिन के सिर्फ एक फोटो पर काम करने की छूट नहीं है। चीफ रिपोर्टर या संपादक सुबह की मीटिंग में उसे दस इवेंट थमाता है जिसमें रुटीन फोटोग्राफर पाँच-दस मिनट तक रुककर दूसरी इवेंट की तरफ दौड़ता है। कभी-कभी इतनी हास्यास्पद स्थिति हो जाती है कि जब तक किसी हाल में आम आदमी द्वारा निकाली गई कई ऐसे तस्वीरें अखबारों में छपीं हैं जिन्हें पाठकों ने सराहा है। लेकिन यह किसी भी संस्थान के लिए निर्भर रहने वाली व्यवस्था नहीं हो सकती क्योंकि ऐसे फोटोग्राफ्स हमारी किसी योजना का हिस्सा नहीं होते, दूसरे इनकी विश्वसनीयता संदिग्ध हो सकती है जिसे जाँचने का या तो कई दफे कोई तरीका नहीं होता। किसी भी मीडिया संस्थान को अपने द्वारा नियंत्रित और निर्देशित तंत्र की जरूरत होगी ही ताकि वह किसी विशिष्ट मामले में सुनियोजित तरीके से काम करवा सके। इस व्यवस्था में उसे प्रशिक्षित फोटो जर्नलिस्ट की जरूरत होगी। वह रिपोर्टर्स से अलग फोकस कर सकता है। अलग सोच सकता है।

इवेंट में अखबार का फोटो जर्नलिस्ट नहीं पहुँच जाता तब तक इवेंट शुरू नहीं हो पाती और यदि छायाकार इवेंट होने के बाद पहुँचता है तो वह इवेंट दोबारा भी रिक्रिएट कर दी जाती है। हरियाणा के पानीपत में एक कार्यक्रम के समाप्त होने के बाद छायाकार के आग्रह पर अतिथि दोबारा मंच पर बैठे और मुख्य अतिथि ने अपने भाषण की कुछ पंक्तियाँ माइक पर आकर दोहराईं। यदि वे ऐसा न करते तो छायाकार की नौकरी जाने का डर था।

उक्त संदर्भों में यदि प्रबंधक के उपर्युक्त कथन को ठीक से जाँचा जाए तो वे खुद भी इस स्थिति के लिए जिम्मेदार पाए जाएँगे। अखबारों ने अक्सर इस बात पर जोर दिया कि किसी भी तरह घटना का फोटो लाया जाए। दुर्भाग्य से कुछ समय पहले तक क्षेत्रीय या भाषायी अखबारों में किसी खबर की तस्दीक करने के लिए उसका फोटो देना अनिवार्य माना जाता था। चाहे वह फोटो कुछ कहता नहीं हो। जैसे यदि अफसरों ने किसी बाँध

का निरीक्षण किया तो चार अफसर, भले ही वे आड़े-तिरछे खड़े दिख रहे हों, दिखाना होंगे। होली मनी है तो धू-धूकर जलती, धुलेंडी है तो रंग खेलते और दीपावली है तो पटाखे चलाते लोगों को रस्म की तरह छापना ही है। नेताजी ने भाषण दिया तो उनको माइक पर खड़े दिखाना ही है और कलेक्टर ने बैठक ली है तो दस अफसर गंभीरता से बैठे लाना ही है। हमने डेस्क पर या संपादकीय बैठकों में एंगल की बात ही नहीं की। हमने हमारे छायाकारों को देश के बेहतरीन पच्चीस-पचास फोटो दिखाकर बताया ही नहीं कि इस तरह काम करना है। कितने भाषायी अखबारों में फोटो एडिटर का पद है, कितने अखबारों में फोटो पत्रिकाएँ उपलब्ध होती हैं और कितने पत्र-पत्रिकाओं में फोटोग्राफर्स को वर्कशॉप, सेमिनार और प्रशिक्षण पाठ्यक्रम करवाए गए? शहरों और कस्बों में काम करने वाले कई फोटो पत्रकारों को यह भी नहीं बताया जाता कि वे किस एंगल पर और कितनी दूरी पर खड़े होकर फोटो खींचे तो बेहतर फोटो निकलेगा। उसे पारंपरिक विषयों से अलग नए विषय कैसे चुनना हैं। इसे वह अपने आप ही सीखता है। और तो और, हाल के कुछ साल तक तो फोटो जर्नलिस्ट और उसका काम सुबह की रिपोर्टिंग प्लानिंग मीटिंग तक का हिस्सा तक नहीं होता था। संपादक खुद पेज के लिए हिचक के साथ फोटोग्राफ चुनते रहे हैं। बड़े और क्लोज अप फोटो प्रकाशित करने का साहस तो भाषायी अखबारों में हाल में आया है। वरना तो बड़ा फोटोग्राफ वे इसी आधार पर नकार देते थे कि यह केवल अँगरेजी अखबार छाप सकते हैं। यह सुकूनदेह बात है कि भाषायी तथा क्षेत्रीय अखबारों में शब्द की तरह तस्वीर के महत्व को अब ज्यादा गंभीरता से समझा जा रहा है। सन 1920-30 के दौर में फोटो जर्नलिज्म की अवधारणा आने के सौ साल बाद।

ट्रेडिल प्रिंटिंग मशीन के युग में एक फोटो लाने से ज्यादा उसे छापने में मशक्कत करनी होती थी। तब हर फोटो का ब्लॉक बनाना होता था। इसके बाद ऑफसेट मशीनें आईं और कलर छापने के सुविधा मिली तो रंग दिखाने की होड़ में ज्यादा फोटो प्रकाशित किए जाने लगे। पेज पर एक-दो फोटो हों लेकिन वे पाठक को खींचने और बाँधने वाले हों, इस पर कम गौर किया गया। फोटो की प्राथमिकता को खबरों के बाद ही रखा गया और फोटोग्राफर की अहमियत रिपोर्टर से कम रही। उसे वेतनवृद्धि रिपोर्टरों के बचे हुए बजट से मिलती थी जबकि रिपोर्टर उसके स्कूटर या मोटरसाइकल के पीछे लदकर ही फील्ड में जाते थे। लिहाजा वह या तो स्टूडियो चलाकर या लोगों के निजी फोटोग्राफ्स बेचकर परिवार चला पाता था। हालाँकि मेरा अनुभव है कि एक फोटोग्राफर रिपोर्टर्स से ज्यादा संपर्क एवं सूचनाएँ रखता है। रिपोर्टर अपनी बीट में ही जाना जाता है जबकि फोटोग्राफर को पूरा शहर पहचानता है। इसलिए उसके पास सबसे ज्यादा सूचनाएँ या खबरें होती हैं। कई रिपोर्टर तो उसकी सूचनाओं पर ही पलते देखे गए हैं।

अच्छा फोटो अच्छे और महँगे कैमरे से निकलता है। दूर-पास से ऑब्जेक्ट को पकड़ने की क्षमता और शॉर्पनेस जैसे गुण महँगे कैमरों में ही होते हैं। इनका भार बड़े और आर्थिक रूप से समर्थ अखबार ही उठा पाते हैं। बड़े अखबारों में यह दिक्कत नहीं रही है लेकिन क्षेत्रीय समाचार पत्रों में यह अफोर्डेबिलिटी कम रहने से फोटो की अपेक्षित क्वालिटी नहीं आ सकी। इसलिए हम क्षेत्रीय या भाषायी अखबारों के बहुत ऐसे फोटो स्मरण नहीं कर पाते जो पाठकों की स्मृति पर गहरे से अंकित हों।

हाल के वर्षों में फोटग्राफर्स के इस बहाने को संपादकों ने इस आधार पर नकारना शुरू किया कि फोटो कैमरे से नहीं, आँख से निकलती है। एक समूह के संपादक कल्पेश याज्ञनिक ने इसे पुरजोर

तरीके से कहना शुरू किया और एंगल के आगे फोटो की क्वालिटी से समझौता करने के लिए संपादकों को तैयार किया तो कई नए और अलग एंगल के फोटोग्राफ्स आना शुरू हुए। उनके समय में हिंदी के इस बड़े अखबार में फोटो पर बड़ा काम होना शुरू हुआ और फोटोग्राफर्स को रुटीन में अलग सोचने और रुटीन से अलग सोचने के लिए प्रेरित किया। इसके नतीजे उस अखबार में दिखना शुरू हुए और कई चर्चित न्यूज फोटो सामने आए।

यह बात भी आजमाकर देखी गई कि रिपोर्टर ही फोटो निकालेगा तो अखबार कितना प्रभावित होगा। इसमें कुछ रिपोर्टर्स ने बेहतरीन फोटो निकाले क्योंकि वह समाचार के साथ उसके फोटो के बारे में भी उतनी ही गहराई से सोच रहा होता था। एक रिपोर्टर ने स्मृति में रह जाने वाली कुछ तस्वीरों के बारे में अनुभव साझा करते हुए बताया था कि वह सुबह-सुबह अपने खेत को देखने जाया करता था। तभी रास्ते में कई नजारे देखने को मिलते थे जिन्हें वह कैमरे में कैद कर लेता था। एक छायाकार के बारे में मुझे बताया गया था कि वह महज आठवीं पास है जिसके कारण पढ़े-लिखे पाठक समाज के लायक नहीं है। उसकी सोच का दायरा बहुत छोटा है। इस फीडबैक के आधार पर मैंने उसकी सेवाएँ छीन लेने का इरादा ही बना लिया था। हालाँकि मुझे उसकी एक खूबी के बारे में भी बताया गया था कि वह हर मौके पर बिना चूके सबसे पहले मौजूद होता है, चाहे वह कोई भी समय, कोई भी जगह या कितना ही विपरीत मौसम हो। वर्ष 2007 में पानीपत के पास दिवाना स्टेशन पर समझौता एक्सप्रेस में विस्फोट की खबर आधी रात के बाद आने के बाद वही एकमात्र फोटोग्राफर था जो बरमूडे और टीशर्ट में मौके पर मौजूद था। हमने जब उससे यह कहना शुरू किया कि उसे रुटीन फोटो नहीं निकालना है। कोई न कोई एंगल लाना है। फोटो में कोई न कोई होल्डिंग ऑब्जेक्ट होना चाहिए तो उसने जो फोटोग्राफ निकाले, उन्होंने उसे एक उदाहरण बना दिया।

फोटोग्राफर्स को हटाते हुए प्रबंधकों का कहना है कि अब हर आदमी के हाथ में कैमरा है और आम आदमी कई बार प्रेस फोटोग्राफर्स से पहले मौके के फोटो ले रहा है। इसलिए हमें इन सिटीजन फोटोग्राफर्स की सेवाएँ लेने का सिस्टम बनाना चाहिए। यह बात सही है कि घटना के समय अपने स्थान से घटनास्थल तक पहुँचने में प्रेस फोटोग्राफर्स को जितना समय लगेगा, तब तक कोई नागरिक घटना को अपने कैमरे में कैद कर चुका होगा। हाल में आम आदमी द्वारा निकाली गई कई ऐसे तस्वीरें अखबारों में छपीं हैं जिन्हें पाठकों ने सराहा है। लेकिन यह किसी भी संस्थान के लिए निर्भर रहने वाली व्यवस्था नहीं हो सकती क्योंकि ऐसे फोटोग्राफ्स हमारी किसी योजना का हिस्सा नहीं होते, दूसरे इनकी विश्वसनीयता संदिग्ध हो सकती है जिसे जाँचने का या तो कई दफे कोई तरीका नहीं होता या उसमें अनावश्यक कीमती वक्त जाता है। इसलिए किसी भी मीडिया संस्थान को अपने द्वारा नियंत्रित और निर्देशित तंत्र की जरूरत होगी ही ताकि वह किसी विशिष्ट मामले में सुनियोजित तरीके से काम करवा सके। इस व्यवस्था में उसे प्रशिक्षित फोटो जर्नलिस्ट की जरूरत होगी। इसलिए कॉस्ट कटिंग के लिए भले ही छोटे शहरों में यह व्यवस्था खत्म कर दी जाए, प्रमुख नगरों में फोटो जर्नलिस्ट की नस्ल को बनाए रखना चाहिए। वह रिपोर्टर्स से अलग फोकस कर सकता है। अलग सोच सकता है। उसका प्रशिक्षण रिपोर्टर से अलग होगा। फिर रिपोर्टर भी फोटो लाए तो सोने में सुहागा। पुलित्जर केंद्र ने नए नागरिक मीडिया की उपादेयता को स्वीकारते हुए उसे पारंपरिक मीडिया से समन्वित करने की बात कही है।

लेखक 'दैनिक भास्कर' में आंचलिक संस्करणों के राष्ट्रीय संपादक रहे हैं।
(Email : shivkumar.vivek@gmail.com)

बदलेंगे, बचेंगे और बढ़ेंगे भारत के अखबार

डिजिटल मीडिया की बढ़ती ताकत, मोबाइल क्रांति और सोशल मीडिया की उपलब्धता ने पढ़ने की दुनिया को काफी प्रभावित किया है। पढ़े जाने वाले अखबार, अब पलटे भी कम जा रहे हैं। केंद्रीय सूचना प्रसारण मंत्री प्रकाश जावडेकर ने एक बार रायपुर में 'मीडिया विमर्श' पत्रिका के आयोजन में कहा था कि ''पहले एक अखबार पढ़ने में मुझे 40 मिनट लगते थे अब उतनी देर में दर्जन भर अखबार पलट लेता हूँ।'' वे ठीक कह रहे हैं, किंतु पढ़ने का समय घटने के लिए अखबार अकेले जिम्मेदार नहीं हैं। अखबारों को देखें तो वे पुराने अखबारों से बहुत सुदर्शन हुए हैं। आज वे बेहतर प्रस्तुति के साथ, अच्छे कागज पर, उन्नत टेक्नोलाजी की मशीनों पर छप रहे हैं। वे मोटे भी हुए हैं। उनकी प्रस्तुति टीवी से होड़ करती दिखती है। उनके शीर्षक बोलने लगे हैं, कई बार टीवी की भाषा ही उनकी भाषा है। उनका कलेवर बहुत आकर्षक हो चुका है। बावजूद इसके पठनीयता के संकट को देखते हुए यह जरूरी है कि अखबार नए तरीके से प्रस्तुत हों और ज्यादा 'लाइव प्रस्तुति' के साथ आगे आएँ। तमाम समाचार पत्र ऐसे प्रयोग कर भी रहे हैं। अखबारों को चाहिए कि वे तटस्थता से हटकर एकात्मता की ओर बढ़ें। पूरे अखबार में एक लय और एक स्वर या संगीत की तरह एक सुर हो। ताकि उस भावभूमि का पाठ सीधा उस अखबार से अपना भावनात्मक रिश्ता जोड़ सके।

विशिष्टता की ओर बढ़ें

एक समय में अखबार का सर्वग्राही होना उसकी सफलता की गारंटी होता था। वह सब कुछ साथ लेकर चलता था। किंतु अब समय है कि अखबार अपने आप में विशिष्टता पैदा करें कि आखिर वे किस पाठक वर्ग के साथ जाना चाहते हैं। इसका आशय यह भी है कि अखबार को अब अपना व्यक्तित्व विकसित करना होगा। उन्हें खास दिखना होगा। उसको किसे संबोधित करना है, इसका विचार करना होगा। उन्हें झुंड से अलग दिखना होगा। एक समर्पित संस्था की तरह काम करना होगा। अब वे सिर्फ खबर देकर मुक्त नहीं

हो सकते, उन्हें अपने सरोकारों को स्थापित करने के लिए आगे आना होगा। सोशल मीडिया और डिजिटल मीडिया की हर हाथ में उपलब्धता के बाद खबर देने का काम अब अकेला अखबार नहीं करता। अखबार जब तक छपकर आता है, तब तक खबरें वायरल हो चुकी होती हैं। टीवी, डिजिटल माध्यम और सोशल मीडिया खबरें ब्रेक कर चुके होते हैं। यानी अब अखबार का मुख्य उत्पाद खबर नहीं है। उसका सरोकार, उसकी विश्लेषण शक्ति, उसकी खबरों के पीछे छिपे अर्थों को बताने की क्षमता, व्याख्या की शैली यहाँ महत्वपूर्ण हैं। अखबार को स्थानीय जनों से एक रिश्ता बनाना पड़ेगा जिसके मूल में खबर नहीं स्थानीय सामाजिक सरोकार होंगे। सामाजिक सरोकारों से गहरी संलग्नता ही किसी अखबार की स्वीकार्यता में सहायक होगी। शायद इसीलिए अब अखबार आयोजन और अभियानों का सहारा लेकर लोगों के बीच अपनी पैठ बना रहे हैं। इससे ब्रांड वैल्यू के साथ स्थानीय सरोकार भी स्थापित होते हैं।

डेस्क नहीं, सीधे मैदान से

अखबारों को अगर अपनी उपयोगिता बनाए रखनी है, तो उन्हें मैदानी रिपोर्टिंग पर ध्यान देना होगा। टीवी, डिजिटल सोशल मीडिया और हर जगह ज्ञान देने वाले की फौज है, पर मैदान में उतरकर वास्तविक चीजें और खबरें करने वाले लोग कम हैं। एक ही ज्ञान इतने स्थानों से कापी होकर निरंतर प्रक्षेपित हो रहा है कि अब लोग नये विचारों की प्रतीक्षा में हैं। नई खबरों की प्रतीक्षा में हैं। ये खबरें डेस्क पर लिखी और रची हुई नहीं होंगी। इसमें माटी की महक और जमीन हो रहे संघर्षों की धमक होगी। इन खबरों में आम लोगों की जिंदगी होगी जो अपने पसीने की खुशबू से इस दुनिया को बेहतर बनाने में लगे हैं। यहाँ सपने होंगे, उम्मीदें होंगी और असंभव के संभव बनाते भागीरथ होंगे। इसके लिए हमें बोलने के बजाय सुनने का अभ्यास करना होगा। इसे ही 'इंटरेक्टिव' होना कहते हैं। यह मंच एकतरफा बात के बजाय संवाद का मंच होगा। अपने पाठकों और उनकी भावनाओं का विचार यहाँ प्रमुख होगा। उन पर चीजें थोपी नहीं जाएँगी, उन्हें बतायी जाएँगी, समझायी जाएँगी और उस पर उनकी राय का भी आदर किया जाएगा। लोकतांत्रिक विमर्शों के मंच बनकर ही अखबार अपनी साख बना और बचा पाएँगे। अखबार विचारों को थोपने के बजाय, विमर्श के मंच की तरह काम करेंगे। सब पक्षों और सभी राय को जगह देते हुए एक सुंदर दुनिया के सपने को सच बनाते हुए दिखेंगे। समाचार और विचार पक्ष अलग-अलग हैं और उन्हें अलग ही रखा जाएगा। खबरों में विचारों की मिलावट से बचने के सचेतन प्रयास भी करने होंगे। विचार के पन्नों पर पूरी आजादी के साथ विमर्श हों, हर तरह की राय का वहाँ स्वागत हो। विचारों की विविधता भी हो और बहुलता भी हो। पत्रकार अपनी पोलीटिकल लाइन तो रखें तो लेकिन पार्टी लाइन से बचें यह भी ध्यान रखना होगा। क्योंकि अखबार की विश्वसनीयता और प्रामाणिकता इससे ही स्थापित होती है।

समस्या नहीं, समाधान बनें

हमारे समाज की एक प्रवृत्ति है कि हम समस्याओं की ओर बहुत आकर्षित होते हैं और समाधानों की ओर कम सोचते हैं। अखबारों ने भी अरसे से मान लिया है कि उनका काम सिर्फ संकटों की तरफ इंगित करना है, उंगली उठाना है। हमारा समाज भी ऐसा मानता है कि हमसे क्या मतलब ? जबकि यह हमारा ही समाज है, हमारा ही शहर है और हमारा ही देश है। इसके संकट, हमारे संकट हैं। इसके दर्दों का समाधान ढूँढना और अपने लोगों को न्याय दिलाना हमारी भी जिम्मेदारी है। एक संस्था के रूप में अखबार बहुत ताकतवर हैं इसलिए उन्हें सामान्य जनों की

आवाज बनकर उनके संकटों के समाधान के प्रकल्प के रूप में सामने आना चाहिए। वे सहयोग के लिए हाथ बढ़ाएँ और एक ऐसा वातावरण बनाएँ जहाँ अखबार सामाजिक उत्तरदायित्वों का वाहक नजर आए। मजलूमों के साथ खड़ा नजर आए। ऐसे में पत्रकार सिर्फ घटना पर्यवेक्षक नहीं, कार्यकर्ता भी है। जिसे हम 'जर्नलिस्टिक एडवोकेसी' कह सकते हैं। ऐसे अभियान अखबार की जड़ें समाज में इतनी गहरी कर देते हैं कि वे भरोसे का नाम बन जाते हैं।

मीडिया कन्वर्जेंस एक अवसर

आज के समय में एक मीडिया में काम करते हुए आप दूसरे मीडिया का सहयोग लेते ही हैं। एक अखबार चलाने वाला संस्थान आज निश्चित ही सोशल मीडिया प्लेटफार्म पर सक्रिय है तो वहीं वह डिजिटल प्लेटफार्म पर भी उसी सक्रियता के साथ उपस्थित है। इस तरह हम अपने संदेश की शक्ति को ज्यादा प्रभावी और व्यापक बना सकते हैं। हमें यह ध्यान रखना होगा कि प्रिंट पर लोग कम आ रहे हैं या उनका ज्यादातर समय अन्य डिजिटल माध्यमों और मोबाइल पर गुजर रहा है। ऐसे में इस शक्ति को नकारने के बजाए उसे स्वीकार करने में ही भलाई है। आपके अखबार की 'ब्रांड वैल्यू' है, सालों से आप खबरों के व्यवसाय में हैं, इसकी आपको दक्षता है, इसलिए आपने लोगों का भरोसा और विश्वास अर्जित किया है। इस भीड़ में अनेक लोग डिजिटल मीडिया प्लेटफार्म पर खबरों का व्यवसाय कर रहे हैं। किंतु आपकी यात्रा उनसे खास है। आपका अखबार पुराना है, आपके अखबार को लोग जानते हैं, भरोसा करते हैं। इसलिए आपके डिजिटल प्लेटफार्म को पहले दिन ही वह स्वीकार्यता प्राप्त है, जिसे पाने के लिए आपके डिजिटल प्रतिद्वंद्वियों को वर्षों लग जाएँगे। यह एक सुविधा है, इसका लाभ अखबार को मिलता ही है। अब कटेंट सिर्फ प्रिंट पर नहीं होगा। वह तमाम माध्यमों से प्रसारित होकर आपकी सामूहिक शक्ति को बहुत बढ़ा देगा।

आज वे संस्थान ज्यादा महत्वपूर्ण हैं, जो एक साथ आफलाइन (प्रिंट), आनलाइन (पोर्टल, वेब, सोशल मीडिया), आन एयर (रेडियो), मोबाइल (एप), आनग्राउंट (इवेंट) पर सक्रिय हैं। इन पाँच माध्यमों को साधकर कोई भी अखबार अपनी मौजूदगी सर्वत्र बनाए रख सकता है। ऐसे में बहुविधाओं में दक्ष पेशेवरों की आवश्यकता होगी, तमाम पत्रकार इन विधाओं में पारंगत होंगे। उनके विकास का महामार्ग खुलेगा। बहु कुशल पेशेवरों के साथ एकीकृत विपणन और ब्रांडिग समाधान की बात भी होगी। कन्वर्जेंस से मानव संसाधन का अधिकतम उपयोग संभव होगा और लागत भी कम होगी। अचल संपत्ति की लागत और समाचार को एकत्र करने की लागत भी इस सामूहिकता से कम होगी।

प्रिंट मीडिया ही है लीडर

सारे तकनीकी विकास और डिजिटाइजेशन के बावजूद भी भारत जैसे बाजार में प्रिंट ही कमा रहा है। एशिया और लैटिन अमेरिका में प्रिंट के संस्करण विकसित हो रहे हैं। भारत, चीन और जापान में आज भी प्रिंट मीडिया की तूती बोल रही है। भारत में तो डिजिटल ही संकट में दिखता है क्योंकि उसने मुफ्त की आदत लगा दी है। जबकि प्रिंट मीडिया ने इसका खासा फायदा उठाया। सारी प्रमुख न्यूज वेबसाइट्स अपने प्रिंट माध्यमों की प्रतिष्ठा का लाभ लेकर अग्रणी बनी हुई हैं। भारत जैसे देश में क्षेत्रीय एवं भाषाई पत्रकारिता में विकास के अपार अवसर हैं। राबिन जेफ्री ने प्रिंट मीडिया के विकास के तीन चरण बताए थे – रेयर, एलीट और मास। अभी भारत ने तो 'मास' में प्रवेश ही लिया है।

■ **संजय द्विवेदी**

पत्रकारिता पर अंबेडकर के विचार

■ उमेश चतुर्वेदी

संविधान सभा के तीन सौ से ज्यादा सदस्य थे, लेकिन संविधान निर्माण में जिन चार राजनीतिक हस्तियों की प्रमुख भूमिका थी, वे थे पंडित जवाहरलाल नेहरू, दूसरे सरदार पटेल, तीसरे राजेंद्र प्रसाद और चौथे डा. भीमराव अंबेडकर। संविधान निर्माता और बाबासाहब के नाम से मशहूर भीमराव अंबेडकर के अलावा तीनों कांग्रेस के सदस्य थे। भीमराव अंबेडकर को आज दलित अधिकारों के उन्नायक के तौर पर भी जाना जाता है। लेकिन बाबासाहब अच्छे लेखक और पत्रकार भी थे। दलितों और वंचितों को जागरूक करने के लिए 31 जनवरी 1920 को कोल्हापुर से मराठी पाक्षिक 'मूकनायक' नामक पाक्षिक पत्रिका की शुरुआत की थी। यह बात और है कि उनका यह पत्र आर्थिक समस्याओं के चलते सिर्फ 19 अंक ही निकल सका और अप्रैल 1923 में बंद हो गया। इसके चार साल बाद 3 अप्रैल 1927 को उन्होंने एक और मराठी पाक्षिक 'बहिष्कृत भारत' निकाला। जो साल 1929 तक निकलता रहा। बाबासाहब अंबेडकर ने इसके अलावा समता, प्रबुद्ध भारत और जनता जैसी पत्रिकाएँ भी निकालीं। यह बात और है कि ये सभी आर्थिक झंझावातों की वजह से लंबी उम्र नहीं हासिल कर पाईं। लेकिन इन पत्रिकाओं के प्रकाशन से स्पष्ट है कि शब्दों की ताकत और मीडिया की ताकत को वे समझते थे। यही वजह है कि उनकी एक पत्रिका असमय काल कवलित होती रही, लेकिन दूसरी को वे निकालने से पीछे नहीं रहे।

जिस व्यक्ति ने इतनी पत्रकारिता की, लंदन के 'द टाइम्स', ऑस्ट्रेलिया के 'डेली मर्करी', अमेरिका के 'न्यूयॉर्क टाइम्स', 'न्यूयॉर्क एम्सटर्डम न्यूज', 'बाल्टीमोर एफ्रो-अमरीकन', 'द नॉर्थ फॉक जर्नल' जैसे अखबारों में सैकड़ों लेख लिखे। वह पत्रकारिता के बारे में क्या सोचता है, यह भी जानना जरूरी है। अंबेडकर ने खुद पत्रकारिता की, अपने विचारों को प्रस्तुत करने के लिए पत्रकारिता को बार-बार हथियार बनाया, उन्हें बाद में संविधान सभा की प्रारूप समिति के अध्यक्ष का दायित्व मिला। पत्रकारिता का अनुभव होने के बावजूद अंबेडकर ने प्रेस की स्वतंत्रता को अमेरिकी संविधान की तरह अलग से अधिकार देने की जरूरत पर जोर नहीं दिया। संविधान सभा में जब प्रेस स्वतंत्रता का विचार आया और अमेरिकी संविधान के उस प्रावधान का हवाला दिया गया, जिसमें यह कहा गया है कि अमेरिकी कांग्रेस (संसद) कोई भी ऐसा कानून नहीं बना सकती, जो प्रेस की स्वतंत्रता और उसके अधिकारों में कटौती को लेकर कोई प्रावधान नहीं कर सकता। लेकिन भारतीय परिप्रेक्ष्य में अंबेडकर इस तरह के अधिकार के हिमायती नहीं थे।

संविधान सभा में अमेरिकी तर्ज पर अलग से प्रेस की स्वतंत्रता की माँग की गई तो अंबेडकर ने कहा था, '(संविधान के)अनुच्छेद 10.1 (क) में प्रेस की स्वतंत्रता भी सन्निहित है। प्रेस, व्यक्ति या नागरिक कहे जाने का केवल अन्य तरीका है। प्रेस को कोई ऐसे विशिष्ट अधिकार प्राप्त नहीं हैं, जो एक साधारण नागरिक को नहीं दिए जा सकते या जिनका प्रयोग एक नागरिक अपनी व्यष्टिक क्षमता में नहीं कर सकता। प्रेस के संपादक और मैनेजर, सभी नागरिक ही हैं, जो समाचार पत्रों के माध्यम

पत्रकारिता अंबेडकर का प्रोफेशन नहीं थी, बल्कि अपने लक्ष्यों की प्राप्ति का साधन जरूर थी। बेशक गांधी और जिन्ना को लेकर अंबेडकर की सोच तल्ख थी क्योंकि वे अलहदा समाज का प्रतिनिधित्व कर रहे थे। लेकिन इसी बहाने में उन्होंने पत्रकारिता को लेकर जो विचार व्यक्त किए हैं, उसकी महत्ता कम नहीं हो जाती।

से अपने अभिव्यक्ति के अधिकार को ही प्रयोग में लाते हैं। इसलिए संविधान में पृथक से किसी विशेष प्रावधान की जरूरत नहीं है।'' इस संदर्भ में संविधान सभा की ही एक और बहस में हिस्सा लेते हुए अंबेडकर ने जो कहा था, उसे भी याद कर लेना चाहिए। तब अंबेडकर ने कहा था, ''समाचारपत्र नागरिकों के विचारों की अभिव्यक्ति का एक महत्वपूर्ण साधन है, लेकिन नागरिकों को व्यक्तिगत रूप से प्राप्त अधिकारों की तुलना में प्रेस को कोई विशेष अधिकार नहीं है।''

अमेरिकी प्रेस की तरह भारतीय प्रेस को संविधान में विशेष अधिकार न देने को लेकर अंबेडकर के मानस को विकसित करने में संभवत: तत्कालीन प्रेस की भूमिका रही। तत्कालीन पत्रकारिता पर अंबेडकर के विचार को जानने के लिए 1943 में दिए एक भाषण को पढ़ना चाहिए। महाराष्ट्र के प्रसिद्ध समाज सुधारक एमजी रानाडे की याद में पुणे में आयोजित एक कार्यक्रम में अंबेडकर ने जो भाषण दिया था, उसमें उन्होंने तत्कालीन पत्रकारिता को लेकर चुभती टिप्पणियाँ की थीं। उस भाषण में अंबेडकर ने कहा था, ''प्रेस, नेताओं की 'सर्वश्रेष्ठ होने और देवता' जैसी छवि को मजबूत बनाता है। अंबेडकर ने उसी भाषण में पत्रकारिता के कर्तव्य की एक तरह से याद दिलाई थी। उन्होंने कहा था, ''बिना लाग लपेट के समाचार देना, समुदाय के हित को ध्यान में रखकर सार्वजनिक नीतियों पर टीका करना, बिना किसी भय के बड़ी से बड़ी शख्सियत की आलोचना करना और उन्हें सही रास्ता दिखाना, जिन्होंने गलत और बेकार रास्ता चुना है, इन बातों को भारत में पत्रकारिता अथवा पत्रकारिता का मूल कर्तव्य नहीं माना जाता है। भारतीय पत्रकारिता का मुख्य काम किसी को नायक बनाकर उसका स्तुति गान करना है।''

अंबेडकर की छवि सिर्फ दलितोत्थान के लिए वैचारिक आधार देने, वंचितों को जागरूक करने और संविधान निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने वाले के तौर पर ही बनी या बनाई गई है। लेकिन पत्रकारिता को लेकर दिए उन्होंने उसी भाषण में आगे जो कहा था, उस पर भी ध्यान दिया जाना चाहिए। उन्होंने इतिहास का हवाला देते हुए कहा था, ''पूर्व में कभी-भी नायक वंदना के लिए देश के हितों का बलिदान इस तरह नहीं किया गया जैसा अब किया जाता है। इससे पहले कभी भी अंधभक्ति इतनी विकराल नहीं थी, जितनी आज के भारत में है। लेकिन मुझे खुशी है कि कुछ सम्मानित अपवाद मौजूद हैं। तो भी ये इतने कम हैं कि इनकी आवाज कभी सुनी नहीं जाती।'' पुणे के इसी भाषण में अंबेडकर ने तत्कालीन भारतीय पत्रकारिता को व्यवसाय बताया था।

रानाडे की जयंती के संदर्भ में दिया अंबेडकर के इस भाषण की छाया उनके निबंध 'रानाडे, गांधी

और जिन्ना' में देखा जा सकता है। इस लेख में उन्होंने रानाडे से गांधी और जिन्ना की तुलना करते हुए गांधी और जिन्ना के बारे काफी तल्ख लिखा है। लेकिन इसी बहाने वे तत्कालीन पत्रकारिता पर सवाल भी उठाते हैं। माना जा सकता है कि उस वक्त तक गांधी से अंबेडकर का मतभेद था। लिहाजा इसकी छाया इस लेख पर थी। वे मानते थे कि गांधी और जिन्ना की छवि पत्रकारिता के जरिए गढ़ी गई है। बहरहाल सिर्फ पत्रकारिता के संदर्भ में उनके इस लेख के कुछ अंशों को देखा जाना चाहिए। जो प्रेस को लेकर अंबेडकर की सोच को जाहिर करते हैं। अपने उस लेख में अंबेडकर ने लिखा है, ''कभी भारत में पत्रकारिता एक व्यवसाय था, अब वह व्यापार बन गया है। वह तो साबुन बनाने जैसा है, उससे अधिक कुछ नहीं। उसमें कोई नैतिक दायित्व नहीं है। वह स्वयं को जनता का जिम्मेदार सलाहकार नहीं मानता।''

आज की पत्रकारिता पर आरोप लगाया जाता है कि वह लोकोन्मुखी नहीं रही। लेकिन यह क्षरण काफी पहले ही हो गया था। इसका अंदाजा अंबेडकर के उसी लेख में मिलता है। इसी लेख में अंबेडकर पत्रकारिता के कर्तव्य भी गिनाते हैं। अपने इस लेख में अंबेडकर कहते हैं, ''भारत की पत्रकारिता इस बात को अपना सर्वप्रथम तथा सर्वोपरि कर्तव्य नहीं मानती कि वह तटस्थ भाव से निष्पक्ष समाचार दे, वह सार्वजनिक नीति के उस पक्ष को प्रस्तुत करे, जिसे वह समाज के लिए हितकारी समझे।'' इसी लेख में अंबेडकर पत्रकारिता के कर्तव्य की भी याद दिलाते हैं। अंबेडकर लिखते हैं, ''चाहे कोई कितने भी उच्चपद पर हो, उसकी परवाह कि ये बिना, बिना किसी की परवाह किए बिना उन सभी को सीधा करे और लताड़े, जिन्होंने गलत अथवा उजाड़पथ का अनुसरण किया है।''

इस लेख में वह पत्रकारिता की तत्कालीन भूमिका पर निराशा भरे स्वर में सवाल भी उठाते हैं। अंबेडकर लिखते हैं, ''उसका (पत्रकारिता का) तो प्रमुख कर्तव्य यह हो गया है कि नायकत्व को स्वीकार करे और उसकी पूजा करे। उसकी छत्रछाया में समाचार पत्रों का स्थान सनसनी ने, विवेक सम्मत मत का विवेकहीन भावावेश ने, उत्तरदायी लोगों के मानस के लिए अपील ने, दायित्वहीनों की भावनाओ के लिए अपील ने ले लिया है।'' इसी लेख में अंबेडकर लार्ड सेल्सबरी एक लेख का हवाला देते हुए कहते हैं, ''सेल्सबरी ने नार्थ क्लिफ पत्रकारिता के बारे में कहा है कि वह तो कार्यालय कर्मचारियों के लिए कार्यालय कर्मचारियों का लेखन है। भारतीय पत्रकारिता उससे भी दो कदम आगे है। वह तो ऐसा लेखन है, जैसे ढिंढोर चियों ने अपने नायकों का ढिंढोरा पीटा हो। नायक पूजा के प्रचार-प्रसार के लिए कभी-भी इतनी नासमझी से देशहित की बलि नहीं चढ़ाई गई है। नायकों के प्रति ऐसी अंधभक्ति तो कभी देखने में नही आयी, जैसी आज चल रही है। मुझे प्रसन्नता है कि आदर योग्य कुछ अपवाद भी हैं। लेकिन वे ऊँट के मुँह में जीरे के समान हैं और उनकी बातों को सदा ही अनसुना कर दिया जाता है।''

पत्रकारिता अंबेडकर का प्रोफेशन नहीं थी, बल्कि अपने लक्ष्यों की प्राप्ति का साधन जरूर थी। बेशक गांधी और जिन्ना को लेकर अंबेडकर की सोच तल्ख थी क्योंकि वे अलहदा समाज का प्रतिनिधित्व कर रहे थे। लेकिन इसी बहाने में उन्होंने पत्रकारिता को लेकर जो विचार व्यक्त किए हैं, उसकी महत्ता कम नहीं हो जाती। कहा जा सकता है कि पत्रकारिता पर अंबेडकर के विचार उसी सोच का ही विस्तार हैं, जिसमें 'ना काहू से दोस्ती, ना काहू से बैर' की बुनियाद पर व्यापक सामाजिक हित में कटु भूमिका निभाने की उम्मीद भरी होती है।

लेखक, प्रसार भारती के कंसल्टेंट हैं।
(Email : uchaturvedi@gmail.com)

रीवा का 'प्रकाश'

■ सुधीर जैन

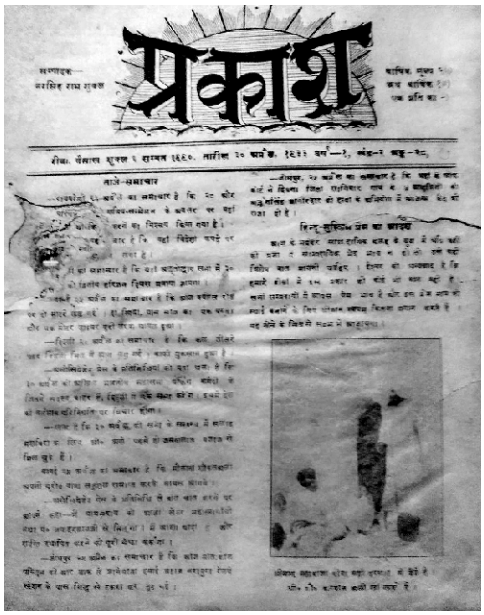

प्रकाश

प्रकाश

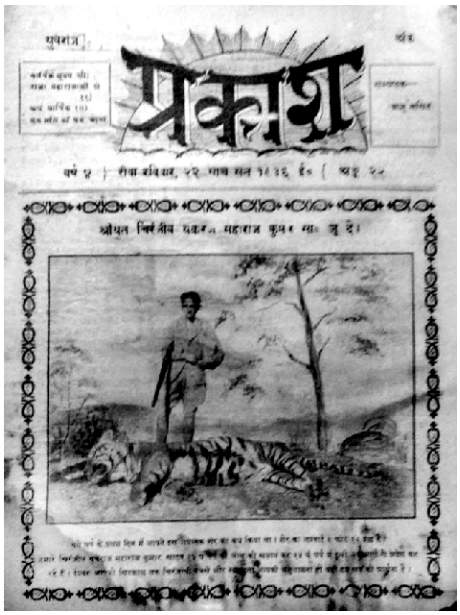

रीवा में सन 1932 से सन 1950 तक एक साप्ताहिक समाचार पत्र निकलता था जिसका नाम 'प्रकाश' था। इस अखबार के साथ एक खास बात यह जुड़ी थी कि जिस चौराहे पर इसका कार्यालय और प्रेस था उस चौराहे का नाम प्रकाश चौराहा कर दिया गया था। यह आज रीवा का सबसे व्यस्त चौराहा है।

सन 1932 में विजयादशमी के शुभ दिन साप्ताहिक प्रकाश अखबार का प्रकाशन प्रारंभ हुआ था और श्री नरसिंह राम शुक्ल इसके प्रथम सम्पादक थे। वैसे तो विंध्य क्षेत्र का सबसे पहला समाचार पत्र 'भारत भ्राता' था, लेकिन प्रकाश समाचार पत्र का विंध्य क्षेत्र की पत्रकारिता में प्रमुख स्थान रहा है। विश्वसनीय समाचार, समसामयिक विषयों पर लेख और सुरुचिपूर्ण रचनाएँ पाठकों द्वारा बड़े चाव से पढ़ी जाती थीं। रीवा राज परिवार का भी प्रकाश को संरक्षण प्राप्त था। स्वतंत्रता के पश्चात राजघरानों का अस्तित्व समाप्त हो गया तब धीरे-धीरे प्रकाश समाचार पत्र का भी अस्तित्व कम होने लगा और रीवा रियासत की आर्थिक सहायता बंद हो जाने के कारण सन 1950 में इसका प्रकाशन पूर्णत: बंद हो गया।

यह वास्तव में गौरव की बात है कि एक अखबार के नाम से उस समय में रीवा का व्यस्ततम वाणिज्यिक चौराहा जाना जाने लगा था और आज भी इस प्रमुख चौराहे को प्रकाश चौराहे के नाम से जाना जाता है।

(Email : mrsudhirjain@yahoo.com)

शोध-पत्र

पूर्वोत्तर भारत में स्त्रियों की सामाजिक सांस्कृतिक सहभागिता और हिन्दी मीडिया

■ तेजी ईशा

पूर्वोत्तर भारत सांस्कृतिक दृष्टि से भारत के अन्य सभी राज्यों से कुछ अलग-सा है। पूर्वोत्तर भारत से यहाँ आशय भारत के सर्वाधिक पूर्वी क्षेत्रों से है। 'सात बहनों' के नाम से जाना जाने वाला राज्य है - असम, मेघालय, अरुणाचल प्रदेश, नागालैंड, त्रिपुरा, मिजोरम, मणिपुर और इनका भाई जाने जाना वाला राज्य सिक्किम। ये सभी आठ राज्य विविधताओं के धनी हैं। इन आठों राज्यों को मिलाकर तकरीबन दो सौ जनजातियाँ यहाँ अपनी संस्कृति और भाषा के साथ इसे राजकीय पहचान देती हैं। तकरीबन ढाई सौ भाषाएँ यहाँ बोली जाती है। ये सभी जनजातियाँ ज्यादातर अपनी बोली से जानी जाती हैं। सेंसस 2011 के अनुसार देश के कुल भौगोलिक क्षेत्र का 7.9 प्रतिशत अर्थात 262, 230 वर्ग किलोमीटर भाग पूर्वोत्तर क्षेत्र के आठ राज्यों के हिस्से में आते हैं। इसी रिपोर्ट के अनुसार इनकी कुल आबादी 45,772,188 है। पूर्वोत्तर भारत अखंड भारत राष्ट्र के लिए प्रकृति के द्वारा दिया गया एक अद्‌भुत उपहार है। पूर्वोत्तर के सभी राज्य अपनी प्राकृतिक सुंदरता एवं सम्पदा के लिए अप्रतिम है। यहाँ के सीधे-साधे लोग मन के सच्चे, सरल एवं विचारों से उन्मुक्त होते हैं। यहाँ का लोकमानस अनेक संभावनाओं से भरपूर है। इस क्षेत्र के लोकगीत, लोक नाट्य, लोक कथाएँ और लोकगाथा आदि यहाँ की जनजातीय भाषाओं में भरे पड़े हैं। इनकी अपनी सामाजिक व्यवस्था भी है जो पीढ़ी दर पीढ़ी चलती आ रही है। पूर्वोत्तर के ही एक राज्य मेघालय की तीन प्रमुख जनजातियाँ समाज खासी, जयंतिया और गारो औपचारिक तौर पर मातृवंशीय हैं। यहाँ विवाह के बाद पुरुष महिला के साथ उनके घर पर रहने लगता है। यहाँ परिवार की मुखिया माँ होती है और संपत्ति का उत्तराधिकार छोटी बेटी को मिलता है। समाज की पहचान वहाँ की संस्कृति से होती है। संस्कृति हमारे जीने और सोचने की विधि है जो हमारे प्रकृति के द्वारा अभिव्यक्त होने पर दिखाई पड़ती है। यह हमारे साहित्य में, धार्मिक कार्यों में, मनोरंजन और आनंद प्राप्त करने के तरीकों में भी देखी जा सकती है। संस्कृति हमारे कपड़ों में, खाने की आदतों में, सामाजिक और धार्मिक रीति रिवाज-उनकी मान्यताओं में बसती है। संस्कृति की विशेषता है कई पीढ़ियों दर पीढ़ियों द्वारा सीखी और सिखाई जाती है। हमारे पूर्वजों ने बहुत-सी बातें अपने पुरखों से सीखी हैं। यह ऐतिहासिक प्रक्रिया है और यह ऐतिहासिक प्रक्रिया सांस्कृतिक विकास का एक हिस्सा होता है। जब अपनी बातें, अपनी अनुभवों को हमारे साथ साझा करते हैं तो जो हमारे मूल्यों के प्रारूप के लिए सटीक बैठता है उसे हम संस्कृति के रूप में अपना लेते हैं। अर्थात मनुष्य संस्कृति को जन्म से या अनुवांशिकता से प्राप्त करता है और फिर धीरे धीरे यही नए ज्ञान तथा विचार और नयी परंपराओं के साथ नई संस्कृति के रूप में अद्यतन होकर जुड़ते जाते हैं।

पूर्वोत्तर भारत में ऐसी कई संस्कृतियों की विविधता है जो अपनी भाषा, अपनी जीवनशैली, अपने खानपान, अपने धर्म यहाँ तक कि अपने निवास स्थान, वास्तुकला, मूर्तिकला, चित्रकला की विभिन्नता के साथ हमारे आसपास विद्यमान है।

उनके त्योहार, उनकी प्रथाएँ, शास्त्रीय संगीत, नृत्य – सभी बहुत विशिष्ट हैं। पूर्वोत्तर की सांस्कृतिक पहचान धर्म, प्रांत आदि पर आधारित होते हैं। इसलिए लगता है कि प्रसिद्ध मानव विज्ञानी 'मैलिनोव्स्की' ने भी माना कि ''मानव जाति की समस्त सामाजिक विरासत या मानव की समस्त संचित सृष्टि का ही नाम संस्कृति है।''

और इन सब चीजों का पालन करने में, निर्वाहन करने में पूर्वोत्तर की महिलाओं का बहुत बड़ा योगदान है। नहीं तो उनके इस विविधता भरे संसार को निरंतर चलायमान बनाए रखने अकेले पुरुषों के लिए संभव नहीं है, उसके लिए महिलाओं की भागीदारी और उस सांस्कृतिक व्यवहार को आत्मसात कर लेना बड़ी बात है। पूर्वोत्तर की भाषा, पोशाक, मूल्यबोध और कई अन्य दृष्टिकोण से इसे जीवित बनाए रखने के लिए जीवन शैली के व्यवहारों में शामिल करते हुए पूर्वोत्तर की महिलाएँ बड़ा रोल अदा करती हैं।

रामधारी सिंह दिनकर ने 'संस्कृति क्या है' शीर्षक से एक निबंध लिखा था, जिसमें उन्होंने संस्कृति की विशेषता और संस्कृति में अंतर का बड़ा ही सुंदर विवेचन किया था। उनके अनुसार संस्कृति के निर्माण में कलात्मक चीजों तथा प्रतीकों का काफी योगदान होता है। उनका मानना है कि संस्कृति को किसी परिभाषा में नहीं बाँधा जा सकता है क्योंकि यह जन्मजात होने के कारण सब में व्याप्त है। हमारी रुचि, जीवनयापन का ढंग, व्यवहार आदि का संबंध संस्कृति ही होता है।

ठीक यही रुचि और व्यवहार पूर्वोत्तर की महिलाएँ का उनके सामाजिक सरोकार में भी दिखता है। पूर्वोत्तर के समाज में उनकी महिलाओं का अहम किरदार होता है। बेटी, पत्नी, सास, माँ या बहन के संबंध के तौर पर तो रहता ही है साथ में उनकी सामाजिक सहभागिता घर से बाहर भी काफी मजबूती से दिखाई पड़ता है। इस सामाजिक–सांस्कृतिक सहभागिता को हम पूर्वोत्तर भारत के एक राज्य असम की राजधानी गुवाहाटी से प्रकाशित हिंदी दैनिक 'पूर्वांचल प्रहरी' और 'दैनिक पूर्वोदय' में प्रकाशित खबरों के माध्यम से समझने की कोशिश करते हैं।

महिलाएँ समाज के विकास एवं तरक्की में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। उनके बिना विकसित तथा समृद्ध समाज की कल्पना भी नहीं की जा सकती। ब्रिघम यंग के द्वारा एक प्रसिद्ध कहावत है कि ''अगर आप एक आदमी को शिक्षित कर रहे हैं तो आप सिर्फ एक आदमी को शिक्षित कर रहे हैं पर अगर आप एक महिला को शिक्षित कर रहे हैं तो आप आने वाली पूरी पीढ़ी को शिक्षित कर रहे हैं।''[1] यह बदलाव और उनका सरोकार इन दोनों समाचार पत्रों में प्रकाशित खबरों से झलकता है।

'दैनिक पूर्वोदय' और 'पूर्वांचल प्रहरी' दैनिक समाचार पत्र हिंदी भाषा में है। इस हिंदी दैनिक में पूर्वोत्तर के विभिन्न राज्यों से संबंधित खबरें प्रकाशित होती हैं। असम, मेघालय, मणिपुर, नगालैंड, त्रिपुरा, सिक्किम, अरुणाचल प्रदेश, मिजोरम में हो रहे राष्ट्रीय स्तर के उतार–चढ़ाव को इस अखबारों में जगह मिलती है। मेरे दो सालों के आँकड़ें संग्रहण में मैंने देखा कि पूर्वोत्तर की महिलाओं से संबंधित जो भी खबरें प्रकाशित हुई हैं उसमें उनकी सामाजिक सांस्कृतिक भागीदारी वाली खबरों की संख्या 216 दैनिक पूर्वोदय में तथा 312 पूर्वांचल प्रहरी में, को स्थान मिला था।

साल 2016–17	दैनिक पूर्वोदय	पूर्वांचल प्रहरी
■ स्त्री संबंधित समाचारों की संख्या	1,056	1,104
■ सांस्कृतिक समाचारों में स्त्री की उपस्थिति	216	312

1. मिश्रा कनक. (2020, January 8). महिलाओं की समाज में भूमिका पर निबंध – Role of Women in Society Essay. Retrieved January 10, 2020, from https://www.hindikiduniya.com/essay/role-of-women-in-society-essay-in-hindi/

एक खबर 29 अक्टूबर 2016 को पूर्वांचल प्रहरी में पृष्ठ 4 में प्रकाशित हुआ था। खबर असम के शिवसागर से आई थी कि महिला सम्मेलन ने लगाई मुफ्त क्लास। इस कहानी में इस समाचार के आधार पर यह देखा जा सकता है कि शिवसागर की महिलाएँ जरूरतमंद स्त्रियों और युवतियों को आत्मनिर्भर बनाना चाहती हैं। आत्मनिर्भर बनाने के लिए वे उन्हें नि:शुल्क सिलाई, कटिंग और मेहंदी की क्लास के जरिए इन कामों में दक्ष बनाकर आत्मनिर्भर बनाते हुए समाज में सम्मान से जीने में मदद करना चाहती है। चार कॉलम की इस खबर में अखिल भारतीय मारवाड़ी महिला सम्मेलन के शिवसागर शाखा से जुड़ी महिलाएँ रिबन काटती हुई वार्ड पार्षदा प्रीति पारीक के साथ दिखाई दे रही हैं।

इस अवसर पर गौर करने वाली बात है कि वार्ड पार्षद की उपस्थिति उनके भी समाज के प्रति सेवा के भाव को स्पष्ट करता है। चंदा देवी दमानी और विद्या देवी चित्रावत के नाम से पहले समाचार में 'समाज सेविका' शब्द प्रकाशित हुआ था। यह सम्मान स्त्रियों को समाज भी देता है इसीलिए खबर के माध्यम से भी उनके प्रति यह सम्मान दिखा रहा है। इसमें गौर करने वाली एक और शब्द है 'वार्ड पार्षदा'। पार्षदा शब्द पार्षद शब्द के स्त्रीलिंग के लिए समाचार में उपयोग हुआ है। पार्षदों का पद या वार्ड पार्षद भारत के संविधान संशोधन के अंतर्गत स्थानीय शासन का प्रावधान किया गया जिसके अंतर्गत नगर निगम, नगर पालिका, नगर पंचायत की व्यवस्था वहाँ के जनसंख्या के आधार पर की जाती है।

उसी क्षेत्र की जनता मतदान कर अपना पार्षद चुनती है। वार्ड पार्षद का काम होता है कि वार्ड से संबंधित समस्याओं को नगर पालिका या नगर परिषद में बताते हुए बजट लेकर समस्या के समाधान की ओर बढ़ना। इसके अलावा वार्ड पार्षद सार्वजनिक क्षेत्रों में साफ-सफाई, रोशनी तथा अन्य सुविधाओं के लिए कार्य करती हैं।[2]

दूसरी खबर गुवाहाटी से अग्रणी महिला सामाजिक संस्था चेतना लेडीज क्लब से आई थी। यह खबर उस वक्त की है जब बाढ़ आ जाने से असम की हालत बहुत भयावह हो जाती है। इस दौरान वहाँ के क्लब और सामाजिक संस्था की महिलाएँ लगभग 300 परिवारों के बीच चावल, दूध, नमक, ब्रेड, दाल, मोमबत्ती, चूरा, जूस, फल और पानी जैसी चीजें खाने के लिए उपलब्ध करवाती हैं, जो मूलभूत जरूरत के लिए बहुत अहम है। इसके अलावा माचिस, कपड़े, बैग, जूते और चप्पल भी सदस्यों ने सबको मुहैया करवाया था। इस खबर से यह स्पष्ट होता है कि वहाँ का समाज कहीं न कहीं प्राकृतिक त्रासदी को झेल रहे लोगों के लिए अपनी ओर से जिम्मेदारी महसूस करता है और उस जिम्मेदारी को पूरा करने के लिए अपने सुविधानुसार मदद करने की पहल भी करता है। रेनू मोदी, मंजू जालान, सुधा बजाज, अनु अग्रवाल, अंजू माहेश्वरी, रेनू मंगलूनिया, मीना मोर और सुनीता शराफ, कुसुम जलाल, बबीता मोर, कविता पटवारी, शांति जालान जैसी क्लब और संस्था की सदस्यों का नाम इस अखबार में अन्य पुरुष कार्यकर्ता के साथ छपा था। यह तो साफ दिख रहा है समाचार के माध्यम से कि उस समाज की 12 स्त्रियाँ समाज के प्रति सेवा दे रही हैं। अन्य स्त्रियों भी समाचार और फोटो से दूर सेवा दे रही होंगी।

हम बचपन से सुनते आए हैं रक्तदान महादान। तो ऐसे में एक महादान की खबर एक 11 जून को दैनिक पूर्वोदय में प्रकाशित हुआ था। इस

2. Sharma, N. (2019, November 7). पार्षद क्या है : पार्षद का चुनाव कैसे होता है, वेतन, योग्यता की जानकारी. Retrieved January 10, 2020, from https://hindiraj.com/parshad-kya-hota-hai/#_What_Is_A_Councilor

खबर में रक्तदान शिविर का आयोजन पूर्वोत्तर प्रदेशीय दिगंबर जैन महिला संगठन द्वारा आयोजित किया गया था। इसमें सभी सदस्य ने रक्तदान किया था। महिला संगठन की अध्यक्ष श्रीमती कौशल्या देवी जावरा ने आसपास के कई पुरुषों को भी रक्तदान देने के लिए समझाया इसलिए होगा, इसकी महत्ता बताई होगी। उन सबने भी रक्तदान के लिए बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया था। इस रक्तदान के बाद ब्लड बैंक में 25 यूनिट खून का संग्रह किया गया था। यह सोचने वाली बात है कि रक्तदान करने की इच्छा रखने वालों के मन में क्या चला होगा? उनके मन में कहीं न कहीं यह जरूर चला होगा कि उनके खून से किसी के जीवन में, उनके खराब स्वास्थ्य को ठीक होने में मदद मिलेगी।

यह जो दूसरों के बारे में चिंता करने की शैली है या अपने आप में बहुत ही संवेदनशील मालूम पड़ता है।

एक खबर दैनिक पूर्वोदय में में ईटानगर से एक अप्रैल 2016 को आई थी जिसमें शीर्षक था 'बेटी ही हो इसके लिए मन्नतें माँगते हैं अरुणाचल के लोग'। इस खबर में स्वस्थ भारत यात्रा दल के चेयरमैन ने अरुणाचल की महिलाओं की तारीफ करते हुए कहा कि यह बहुत बड़ी बात है कि यहाँ बेटियाँ दहेज लेकर शादी करती हैं। बरात लेकर बेटियाँ लड़के के घर जाती हैं और उनके जन्म होने पर खुशियाँ मनाई जाती हैं। यह एक पितृसत्ता सामाजिक ढाँचे के लिए बहुत प्रेरणास्रोत बात है कि अरुणाचल की महिलाओं ने पूरे देश के लिए एक संदेश स्वरूप यह बात छोड़ी है। इस खबर के माध्यम से यह देखा जा सकता है कि भारतीय समाज पितृसत्ता है और इस सत्ता समाज में एक महिला की कितनी अहमियत होती है। महिला की अहमियत महिलाओं को ही देनी पड़ती है और उनको देना ही चाहिए। तो यह देखा जा सकता है कि एक समाज के निर्माण में महिलाओं की महिलाओं के प्रति सिस्टर रूट की भावना बहुत जरूरी महसूस बहुत सही दिशा में जाने के बाद काफी विकासशील हो सकता है।

पूर्वांचल प्रहरी में एक खबर मंजू देवी की थी। मंजू देवी बंगाईगाँव की रहने वाली थी। वे अपने समाज के कल्याण और हर्ष व्याप्त करने के लिए 30 दिनों की तपस्या की थी। जिसे 'मासखमण तप' बोला जाता है। इस प्रकाशित खबर के माध्यम से यह समझा जा सकता है कि समाज चेतनशील हो, प्रसन्न हो तथा मंगलमय हो इसके लिए पूर्वोत्तर की महिलाएँ बहुत समर्पित होती हैं। उनके अंदर वो इच्छा शक्ति है कि अपने घर से बढ़कर समाज के लिए वह 30 दिनों तक कठिन तपस्या करती है। यह पूर्वोत्तर की संस्कृति है जो एक साधारण स्त्री को समाज के लिए, उसकी सुख-सुविधा, उसके सौहार्द्र के लिए इतने तपी कदम उठाने की इच्छा शक्ति प्रदान करता है।

यह खबर दैनिक पूर्वोदय से है। जो दिनाँक 30 जुलाई 2017 को शिलांग से प्रकाशित हुई थी। इस खबर में आप यह देख सकते हैं कि आस्था और विश्वास के लिए किसी भाषा की जरूरत नहीं होती है। शिलांग में खासी, जयंतिया जनजातियाँ हैं। जिनकी भाषा खासी और जयंतिया है फिर भी वहाँ पर 'नानी बाई रो मायरो' नाम की एक गुरुवाणी मातृभाषा तैयार की गई है जिसका प्रभाव शिलांग के इलाके में भी है। इस खबर में यह बताया गया है कि यह गुरुवाणी का पाठ 12वीं कक्षा की लड़की के द्वारा किया जाएगा। इस गुरुवाणी का पाठ कर कृष्ण के प्रति लोगों में प्रेम भाव जाग्रत करते हुए समाज में प्रेम से रहना सिखाएगी। प्रेम से रहना एक स्त्री के द्वारा सिखाए जाने पर समाज पर गहरा असर रहता है।

शोध के दौरान प्रकाशित समाचार के अवलोकन के बाद यह दिखाई पड़ता है कि सामाजिक भूमिकाओं, जिम्मेदारियों और अधिकारों के मामले में सात बहनों के नाम से

मशहूर पूर्वोत्तर राज्यों में देश के दूसरे राज्यों के मुकाबले महिलाओं की स्थिति बेहतर है। लेकिन आम जनजीवन में उनको ज्यादा अधिकार नहीं है। वे वहाँ निर्णायक स्थिति में नहीं हैं। न तो राजनीति में उनकी कोई चलती है और न ही समाज में। मणिपुर की राजधानी इंफाल में महिलाओं का एक अनूठा बाजार भी है, जो देश में अपनी तरह का अकेला ऐसा बाजार है जहाँ मालिक भी महिलाएँ हैं और दुकानदार भी।

इसी तरह मेघालय में पैतृक संपत्ति पर छोटी बेटी का अधिकार होता है। मिजोरम समेत बाकी राज्यों में भी कमोबेश यही स्थिति है।

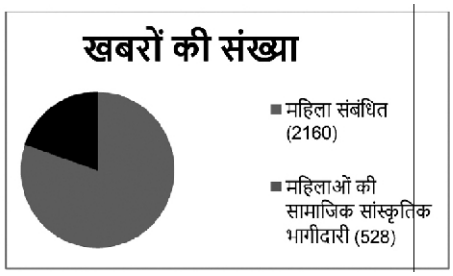

सामाजिक रूप से पूर्वोत्तर का समाज रूढ़िवादी मान्यतों के दायरों से इतर महिलाओं को समाज के प्रति जिम्मेदार बनने का अवसर देता है और साथ में एक आत्मविश्वास भी जीवित रहने की। महिलाएँ घर के काम के साथ साथ बाहर का काम भी करते हुए अन्य सामाजिक और सांस्कृतिक सरोकारों में मदद करती नजर आईं। दोनों हिन्दी अखबारों को मिलाकर पूर्वोत्तर की महिलाओं की खबरों की संख्या 2160 है और उसमें 528 खबरें ऐसी महिलाओं से संबंधित है जो वहाँ के समाज में अपनी सामाजिक सांस्कृतिक जिम्मेदारी के प्रति निर्वहन करते हुए खबर का हिस्सा बनी। यह महिलाओं से संबंधित खबरों की लगभग 24 प्रतिशत है, जो एक चौथाई के ठीक नजदीक है। अन्य खबरें शिक्षा, राजनीति, महिलाओं के विरुद्ध हिंसा, खेल, स्वास्थ, साहित्य से जुड़ी होती हैं। ये सभी बचे तीन हिस्से में होंगे क्योंकि एक भाग में सामाजिक-सरोकार से संबंधित खबरें हैं। किसी अखबार में प्रकाशित खबरों की हकीकत यह भी है कि कुछ और मिलती-जुलती खबरें अखबारों तक नहीं पहुँच पाती है। पूर्वोत्तर भारत की विविधता को धनी बनाए रखने में वहाँ की महिलाओं का बड़ा योगदान है। चाहे वो खासी, जयंतिया, आओ, मैतई, नागा, गारो, बोडो, कार्बी, मिजो या अन्य जनजातीय महिलाएँ हों। वे सभी अपने परिवार के बाद कहीं न कहीं समाज के प्रति अपनी सामाजिक और सांस्कृतिक जिम्मेदारी का वहन करते हुए वे खुद गौरवान्वित महसूस करते हुए शेष भारत के लिए एक उदाहरण भी प्रस्तुत करती हैं।

संदर्भ

1. उपाध्याय डा. रामजी : भारत की संस्कृति साधना, रामनारायणलाल प्रयाग, सं 2016 वि.सं
2. मिश्रा शिवशेखर : भारत का सांस्कृति विकास, वाराणसी : लखनऊ विश्वविद्यालय, सं. 2010
3. प्रसाद माता, पूर्वोत्तर भारत के राज्य, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली 1998
4. मिश्र देवेन्द्र कुमार, 'पूर्वोत्तर भारत की कला संस्कृति', समन्वय पूर्वोत्तर, अंक 10, जनवरी-मार्च 2011
5. Banerjee, Amalesh; Women emancipation and development: N E perspective; ed. by Asok Kumar Ray and Basudeb Dutta Ray. New Delhi: Om , 2008.
6. Choudhury, Biplab Loha; Communication and women's empowerment : quintessence from three Northeast communities; The Women Press, 2004
7. Gangte, Priyadarshini M; Women of North East in present context.- New Delhi: Maxford, 2011

महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी वि.वि., वर्धा के जनसंचार विभाग में 'पूर्वोत्तर भारत' संबंधी विषय में शोधरत हैं। पूर्वोत्तर भारत की स्त्रियों, मीडिया और संस्कृति से संबंधित कई लेख प्रकाशित।
(Email : tejeeandisha@gmail.com)

खबर खबरवालों की

■ संजय द्विवेदी

कोरोना वायरस का कहर, बंद होंगे 60 अखबार

कोविड-19 के कहर का असर समाचार पत्र संगठनों पर भी पड़ रहा है। मीडिया मुगल रूपर्ट मर्डोक के ऑस्ट्रेलियाई मीडिया समूह 'न्यूज कॉर्प' ने घोषणा की है कि कोविड-19 के कारण विज्ञापनों में काफी गिरावट आई है। ऐसे में वह करीब 60 प्रादेशिक अखबारों का मुद्रण बंद कर देगी। 'द ग्लोबल टाइम्स' में छपी एक रिपोर्ट के मुताबिक, ''न्यूज कॉर्प ने कहा है कि न्यू साउथ वेल्स, विक्टोरिया, क्वींसलैंड और दक्षिण आस्ट्रेलिया में कंपनी के अखबारों का मुद्रण बंद कर दिया जाएगा, ये अखबार अब ऑनलाइन पढ़ने को मिलेंगे।''इस बारे में न्यूज कॉर्प आस्ट्रेलिया के एग्जिक्यूटिव चेयरमैन माइकल मिलर का कहना है, ''हमने यह फैसला काफी सोच-समझकर लिया है। कोरोना वायरस संकट के कारण अप्रत्याशित रूप से काफी आर्थिक दबाव आ गया है और ज्यादा से ज्यादा नौकरियों को बनाए रखने के लिए हम हर संभव उपाय कर रहे हैं।''' द ग्लोबल टाइम्स' की रिपोर्ट के अनुसार, इस महामारी की शुरुआत के पहले से ही तमाम आस्ट्रेलियाई मीडिया समूह ऑनलाइन सामग्री की तरफ अपना ध्यान केंद्रित कर रहे थे। 'द गार्डियन' की रिपोर्ट के अनुसार, कोरोना वायरस की वजह से ब्रिटेन में सरकार द्वारा किए गए लॉकडाउन के कारण अखबारों की बिक्री में 30 प्रतिशत तक की कमी हुई है। इस बीच भारत में भी आउटलुक पत्रिका ने अस्थायी तौर पर अपनी छपाई बंद कर दी है।

समस्याओं के निदान के लिए वित्त मंत्री से गुहार

टेलीविजन प्रसारण कंपनियों के संगठन 'न्यूज ब्रॉडकास्टर्स एसोसिएशन' (एनबीए) ने वित्त मंत्री निर्मला सीतारमण को पत्र लिखकर अपनी समस्याओं का निदान करने की माँग की है। संगठन ने वित्त मंत्री को ये जानकारी दी कि विज्ञापनों को लेकर वे भी काफी गंभीर समस्याओं का सामना कर रहे हैं। एनबीए ने बताया कि जारी किए जा चुके विज्ञापन अब रद्द किए जा रहे हैं और बड़े चैनलों तक के विज्ञापनों की बुकिंग भी 50 प्रतिशत से ज्यादा घट गई है। लिहाजा एनबीए ने वित्त मंत्री से प्रसारण माध्यमों के विज्ञापनों पर लगने वाले 18 प्रतिशत की दर से लागू माल एवं सेवा कर (जीएसटी) खत्म करने की माँग की है। एनबीए ने अपने पत्र में यह भी कहा कि उनके विज्ञापनों पर जीएसटी को या तो पूरी तरह से हटाया जाए या फिर इसकी दर पाँच प्रतिशत कर दी जाए। एनबीए के अध्यक्ष रजत शर्मा ने वित्त मंत्री निर्मला सीतारमण को पत्र लिखकर कहा कि कोरोना महामारी के बढ़ते संक्रमण की रोकथाम के लिए न्यूनतम शारीरिक दूरी बनाए रखने की व्यवस्था से ब्राडकास्टर्स की लागत बहुत ज्यादा बढ़ गई है। उन्होंने लिखा है न्यूज ब्रॉडकास्टर्स का मुख्य स्रोत विज्ञापन है और कोविड-19 महामारी और आवागमन पर रोक के चलते ब्रॉडकास्टर्स बहुत ही दबाव में हैं। पत्र में रजत शर्मा ने इस बात का भी जिक्र किया कि विज्ञापन एजेंसियाँ भुगतान के लिए ज्यादा समय माँग रही है और उधार की

अवधि 60 दिन से और अधिक बढ़ाए जाने का दबाव बना रही हैं।

सीएनएन न्यूज 18 से विदा हुए तीन दिग्गज

वरिष्ठ पत्रकार और सीएनएन न्यूज18 के कार्यकारी संपादक भूपेंद्र चौबे की चैनल से विदाई के बाद यह सिलसिला थमा नहीं है। चौबे के बाद चैनल के दो महत्वपूर्ण पत्रकार-संपादक प्रवीण थांपी और सुदीप मुखिया ने भी नमस्कार कह दिया है। ऐसे में देश के इस बहुत खास चैनल में अफरातफरी मची हुई है। तीनों पत्रकारों का अँगरेजी टीवी पत्रकारिता में बहुत अहम स्थान है। भूपेंद्र चौबे इस अग्रणी समूह के साथ करीब 15 साल से जुड़े थे। चौबे को 2005 में कार्यकारी संपादक की जिम्मेदारी सौंपी गई थी। उन्होंने 'एनडीटीवी' के साथ पत्रकारिता की शुरुआत की। इसके बाद उन्होंने 'सीएनएन-आईबीएन' के लिए कई टीवी कार्यक्रम किए।

सांसदों के कामकाज पर नजर रखेगी यह वेबसाइट

दो दशक से ज्यादा समय तक प्रिंट एवं इलेक्ट्रॉनिक मीडिया में सेवाएँ दे चुके रोहित सक्सेना ने लंबे समय से संसदीय कार्यप्रणाली और संसद एवं सांसदों से जुड़ी खबरों से रूबरू कराने वाले 'पार्लियामेंट्री बिजनेस' के तहत सांसदों पर शोध कर रहे नीरज गुप्ता के साथ मिलकर इसे अब मीडिया वेंचर का रूप दिया है। रोहित सक्सेना इस समूह में प्रबंध संपादक के रूप में कार्यभार सँभालेंगे। वहीं, नीरज गुप्ता बतौर प्रधान अपनी जिम्मेदारी निभाएँगे। बता दें कि यह समूह वेबसाइट 'पार्लियामेंट्री बिजनेस डॉट कॉम' शुरू करने के साथ ही मैगजीन भी ला रहा है। इसके अतिरिक्त यह समूह भविष्य में एक चैनल प्रारंभ करने को योजना पर भी काम कर रहा है। बताया जाता है कि इस मीडिया हाउस का उद्देश्य सांसदों की अपनी जिम्मेदारियों के प्रति जवाबदेही तय कराना है। पार्लियामेंट बिजनेस सांसदों को उनके क्षेत्र से जुड़ी समस्याओं से अवगत कराने एवं संसदीय क्षेत्र की जनता और उनके प्रतिनिधियों (सांसदों) के बीच कड़ी का काम करेगा।

पत्रकारों की मदद में आगे आया कश्मीर प्रेस क्लब

कोरोना वायरस और उसकी रोकथाम के लिए जारी 'लॉकडाउन' का असर मीडिया उद्योग पर भी पड़ा है। इस बीच कश्मीर घाटी के पत्रकारों की हालत भी किसी से छिपी नहीं है। लिहाजा इसे देखते हुए पत्रकारों की मदद के लिए कश्मीर प्रेस क्लब (केपीसी) सामने आया है। कश्मीर प्रेस क्लब ने कोविड-19 महामारी के दौरान स्थानीय पत्रकारों की मदद के लिए महत्वपूर्ण कदम उठाते हुए जरूरतमंद पत्रकारों को कल्याण निधि से पैसा मुहैया कराने का फैसला किया है। केपीसी अध्यक्ष शुजा ठाकुर ने बताया कि कश्मीर का कोई भी पत्रकार चाहे वो क्लब का सदस्य नहीं भी हो उसे मदद करने की कोशिश की जाएगी। फिलहाल उनकी मदद के लिए 3000 रुपये प्रतिमाह दिया जाएगा।

पदस्थापनाएँ

- व्यापार पर केंद्रित वेबसाइट 'मनीकंट्रोल' ने रंजीता सहगल को राजस्व प्रमुख नियुक्त किया है। सहगल की जिम्मेदारी राजस्व बढ़ाने और संगठन के लिए बेहतर व्यापार रणनीति बनाने की होगी। सहगल इसके पहले नेटवर्क18 में भूमिका निभा रही थीं। वे सीएनबीसी टीवी18 डिजिटल की व्यापार प्रमुख थीं। उन्होंने टाइम्स, सिफी, याहू, रेडिफ डॉट कॉम आदि के साथ काम किया है।
- मलयालम अखबार 'मातृभूमि' में तीन साल की पारी खेलने के बाद कमल कृष्णनन अब अँगरेजी दैनिक अखबार 'टाइम्स आफ इंडिया' से जुड़ गए हैं। वे केरल के लिए

रेस्पॉन्स विभाग का नेतृत्व करेंगे। टाइम्स आफ इंडिया में यह इनकी दूसरी पारी है।

- पत्रकार अजीत सिंह दैनिक भास्कर समूह में सहायक समाचार संपादक बनाए गए हैं। अभी तक मुम्बई में रचे बसे अजीत ने एक अप्रैल से समूह के प्रधान कार्यालय भोपाल में डिजिटल भास्कर के साथ पारी शुरू की है।
- 'आजतक' न्यूज चैनल के जितने भी क्षेत्रीय समाचारों के 'तक' हैं, 'यूपी तक', 'बिहार तक', 'मध्यप्रदेश तक' आदि, सभी का प्रमुख वरिष्ठ पत्रकार मिलिंद खांडेकर को बनाया गया है। उनका पद है - मैनेजिंग एडिटर ('तक' चैनल्स)! बताया जा रहा है कि मिलिंद वेब-डिजिटल डिविजन के भी प्रमुख होंगे। मिलिंद खांडेकर हाल-फिलहाल तक बीबीसी में थे। उससे पहले लंबे समय तक एबीपी न्यूज में संपादक रहे।

स्मृति शेष

पिंगली पार्वती प्रसाद : दूरदर्शन की जानी-मानी समाचार वाचिका और लेखक पिंगली पार्वती प्रसाद का निधन हो गया है। करीब 70 वर्षीय पार्वती प्रसाद कुछ समय से बीमार चल रही थीं। हैदराबाद में उन्होंने आखिरी साँस ली। आंध्रप्रदेश के मुख्यमंत्री वाईएस जगन मोहन रेड्डी ने पार्वती के निधन पर शोक जताते हुए कहा कि आकाशवाणी और दूरदर्शन में उन्होंने अमूल्य योगदान दिया था। दूरदर्शन के समाचार विभाग में वरिष्ठ न्यूज रीडर के तौर पर उन्होंने करीब 35 साल सेवाएँ प्रदान की।

डैरन साइमन : अमेरिका के प्रमुख अखबारों ने शामिल 'द वॉशिंगटन पोस्ट' के रिपोर्टर डैरन साइमन के निधन की खबर सामने आई है। पिछले दिनों साइमन अपने अपार्टमेंट में मृत पाए गए। अखबार के संपादकों ने इसकी सूचना अपने मीडियाकर्मियों को दी। फिलहाल उनकी मौत की वजह पता नहीं चली है। साइमन डी.सी. सरकार और राजनीति को कवर करते थे और वे हाल ही में इस अखबार से जुड़े थे। इसके पहले वे सीएनएन में सीनियर न्यूज राइटर के तौर पर कार्यरत थे।

ब्रह्म कांचीबोटला : भारतीय-अमेरिकी पत्रकार ब्रह्म कांचीबोटला का कोरोना वायरस के संक्रमण की वजह से निधन हो गया। वे करीब 66 वर्ष के थे। न्यूयॉर्क के एक अस्पताल में भर्ती थे। प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने ब्रह्म कांचीबोटला के निधन पर शोक जताया है। उन्होंने अपने ट्विटर अकाउंट पर ब्रह्म कांचीबोटला को श्रद्धांजलि देते हुए लिखा - ''भारतीय-अमेरिकी पत्रकार श्री ब्रह्म कांचीबोटला के निधन से गहरा दुख हुआ। उन्हें उनके बेहतरीन काम, भारत और अमेरिका को करीब लाने के प्रयासों के लिए याद किया जाएगा। उनके परिवार तथा मित्रों के लिए संवेदनाएँ।''

अनिल कुमार शर्मा : ब्लड कैंसर से जूझ रहे पत्रकार अनिल कुमार शर्मा का पिछले दिनों निधन हो गया है। वह जयपुर के अस्पताल में अपना इलाज करा रहे थे। आगरा के करियप्पा रोड बालूगंज निवासी अनिल कुमार शर्मा शासन से मान्यता प्राप्त संवाददाता थे। वह इन दिनों अलीगढ़ से प्रकाशित होने वाले अखबार 'राजपथ' में आगरा के संवाददाता थे।

(Email : 123dwivedi@gmail.com)

सप्रे संग्रहालय की वेबसाइट

सप्रे संग्रहालय, भोपाल की वेबसाइट में सप्रे संग्रहालय में संग्रहीत प्रचुर संदर्भ सामग्री की सूची, संग्रहालय के प्रकाशनों का संक्षिप्त परिचय, संग्रहालय आने वाले विद्वानों की सम्मतियाँ आदि विवरण सम्मिलित किए गए हैं। इस विपुल संदर्भ सामग्री का लाभ उठाने के इच्छुक शोधकर्त्ता, पत्रकार, लेखक एवं विद्यार्थी वांछित सामग्री की जानकारी सप्रे संग्रहालय की वेबसाइट से प्राप्त कर सकते हैं।

Website : www.sapresangrahalaya.com
Email : sapresangrahalaya@yahoo.com

स्मृति शेष

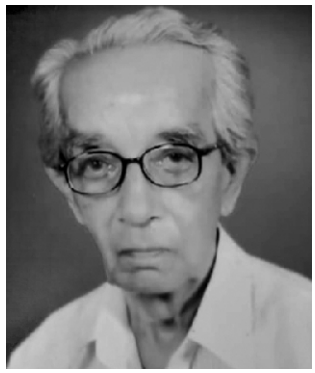

श्री शिवप्रसाद मुफलिस

सप्रे संग्रहालय को मुफलिस जी की भेंट

सप्रे संग्रहालय के अनन्य सहयोगी, संसदीय मामलों के गहरे जानकार, पत्रकारिता और समाज सेवा में गहरी रुचि रखने वाले मध्यप्रदेश विधानसभा के पूर्व उपसचिव श्री शिवप्रसाद मुफलिस का 21 अप्रैल 2020 को निधन हो गया।

वर्ष 1934 में लखनऊ में जन्मे एवं प्रयागराज में शिक्षा ग्रहण कर उन्होंने सन 1955 में पूर्ववर्ती विन्ध्यप्रदेश विधानसभा के सचिवालय में सेवा प्रारम्भ की। नवम्बर 1956 में राज्य पुनर्गठन के फलस्वरूप वे नये मध्यप्रदेश की विधानसभा में पदस्थ हुए। सन 1992 में सेवा से अवकाश ग्रहण किया। श्री मुफलिस राज्य स्तरीय अधिमान्यता प्राप्त पत्रकार थे।

श्री मुफलिस को सन 1995 में केन्द्रीय विद्यालय बैरागढ़, सन 1999 में राष्ट्रीय हिन्दी मेल समाचार पत्र तथा यूथ होस्टल एसोसिएशन, सन 2005 में स्वयंसिद्धा कल्याण समिति, सन 2007 में माधवराव सप्रे स्मृति समाचारपत्र संग्रहालय एवं शोध संस्थान, भोपाल द्वारा सम्मानित किया गया था। प्रयागराज में विद्यार्थी जीवन के दौरान आप श्री सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', सुश्री महादेवी वर्मा, फिराक गोरखपुरी, श्री विजय देव नारायण साही, श्री सुमित्रानन्दन पन्त एवं श्री राम कुमार वर्मा प्रभृति साहित्यकारों के सम्पर्क में रहे।

श्री मुफलिस ने सन 1967 में साईकिल से नेपाल यात्रा एवं सन 1968 में हिच-हाइक के माध्यम से मिडिल-ईस्ट देशों की यात्रा की थी। श्री मुफलिस ने श्री अर्जुन सिंह के सहयोग से सन 1958 में कास्मोपालिटन इन्स्टीट्यूट आफ पब्लिक अफेयर्स (सीपा) की स्थापना बौद्धिक विचार विमर्श के लिए की थी। इसके अंतर्गत विभिन्न देशों के राजदूत तथा भारत के जाने माने विचारकों को महत्वपूर्ण विषयों पर विचार व्यक्त करने हेतु आमंत्रित किया जाता था। इस संस्था के अंतर्गत जिन प्रमुख लोगों को आमंत्रित किया गया उनमें श्री लालबहादुर शास्त्री, श्री वी.के. कृष्णा मेनन, सर सी.पी. रामास्वामी अय्यर, डा. रघुवीर, श्री अटल बिहारी वाजपेई, डा. राम मनोहर लोहिया, श्री अशोक मेहता, श्रीमती सुचेत कृपलानी, श्रीमती तारकेश्वरी सिन्हा, श्री हरि विष्णु कामथ, डा. बी.वी. केसकर प्रमुख हैं। आपने सीपा फिल्म क्लब, राष्ट्रकुल संघ, मध्यप्रदेश माउनटेनियरिंग इंस्टीट्यूट, रोटरी क्लब भोपाल साउथ, मध्यप्रदेश दूरदर्शन दर्शक संघ आदि संस्थाओं की भी स्थापना की।

उन्होंने अपने नाम के साथ मुफलिस उपनाम भले ही लगाया था, किन्तु संबंधों और संपर्कों की दृष्टि से वे अत्यंत समृद्ध थे। श्री मुफलिस की अंतिम इच्छा के अनुसार उनकी पार्थिव देह जे.के. हास्पिटल, कोलार रोड, भोपाल को सौंप दी गई।❑❑

भारतीय समाज : यक्ष प्रश्न

- जिस समाज में ढाई हजार साल से अहिंसा की परंपरा है, बुद्ध-महावीर-गांधी के देश में इतनी हिंसा क्यों है ? बाहुबल की हिंसा : धनबल की हिंसा : वाणी की हिंसा।
- वसुधैव कुटुम्बकम की मान्यता वाला समाज इतने खानों में बँटा हुआ क्यों है ?
- जहाँ सामाजिक लोकतंत्र नहीं, वहाँ राजनीतिक लोकतंत्र कितना सार्थक है ?
- सत्यम् शिवम् सुन्दरम् के देश में द्वेष और भेदभाव का गरल कैसे ?
- शास्त्रार्थ की परम्परा वाले देश में संवादहीनता क्यों ?
- हर कोई अपनी ही क्यों सुनाना चाहता है ? दूसरों की क्यों नहीं सुनना चाहता ?
- जिस देश में मौन भी एक व्रत है, उसमें इतना कोलाहल क्यों ?
- हमें खुशामद की भाषा आती है, सराहना की नहीं! हमें निंदा की भाषा आती है, विवेचना की नहीं! क्यों ?

प्रस्तुति : विजयदत्त श्रीधर, संस्थापक-संयोजक, सप्रे संग्रहालय, भोपाल ❖ मोबाइल - 9425011467 ❖ ईमेल - sapresangrahalaya@yahoo.com

हिन्दी पत्रकारिता यक्ष प्रश्न

- पत्रकारिता व्यवसाय नहीं, अनुष्ठान है। गंभीरता और भरोसा पत्रकारिता के प्राणतत्व हैं। इन्हीं को संकट में डालकर आत्मघात की राह पर क्यों चल पड़ी है हिन्दी पत्रकारिता ?
- हिन्दी पत्रकारिता में पेशेवराना हुनर बढ़ाने की तड़प क्यों नजर नहीं आती ?
- राजनीति के मल्ल युद्ध में फँसकर अपनी दुर्दशा क्यों करा रही है, हिन्दी पत्रकारिता ?
- हिन्दी भाषा को सँवारने में योगदान देने वाली हिन्दी पत्रकारिता हिन्दी भाषा के संहार में क्यों जुट गई है ?
- हिन्दी में सोचने समझने वाले विषय विशेषज्ञ, लेखक और स्तंभकार क्यों नहीं पनपा पाई, हिन्दी पत्रकारिता ?
- अँगरेजी की जूठन और दासता पर क्यों मुग्ध है हिन्दी पत्रकारिता ?
- भारतीय भाषाओं के बीच अन्तरसंवाद और आदान-प्रदान का सेतु क्यों नहीं बना रही है, हिन्दी पत्रकारिता ?
- अन्धविश्वासों और चमत्कारों की ठगी को क्यों प्रश्रय दे रही है, हिन्दी पत्रकारिता ?
- सामाजिक सरोकारों से क्यों दूर भाग रही है, हिन्दी पत्रकारिता ?
- बाजार चलाने की सनक में बाजारू क्यों हो रही है हिन्दी पत्रकारिता ?

प्रस्तुति : विजयदत्त श्रीधर
संस्थापक-संयोजक, सप्रे संग्रहालय, भोपाल
मोबाइल : 09425011467
Email : sapresangrahalaya@yahoo.com

उदन्त मार्त्तण्ड

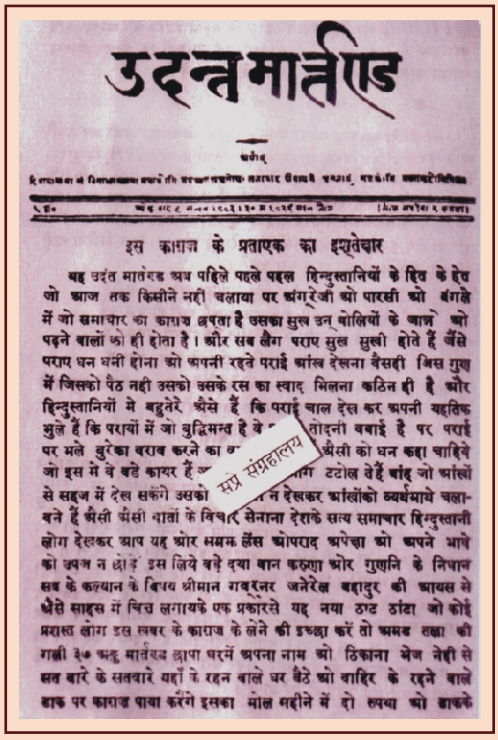

इस कागज के प्रताएक का इश्तेहार

यह उदंत मार्तण्ड अब पहिले पहले पहल हिन्दुस्तानियों के हित के हेत जो आज तक किसीने नहीं चलाया पर अंगरेजी ओ पारसी ओ बंगले में जो समाचार का कागज छपता है उसका सुख उन बोलियों के जान्ने ओ पढ़ने वालों को ही होता है। और सब लोग पराए सुख सुखी होते हैं जैसे पराए धन धनी होना ओ अपनी रहते पराई आंख देखना वैसही जिस गुण में जिसको पैठ नही उसको उसके रस का स्वाद मिलना कठिन ही है और हिन्दुस्तानियों मे बहुतेरे ऐसे हैं कि पराई चाल देख कर अपनी यहतिक भुले हैं कि परायों में जो बुद्धिमन्त है वे [illegible] तोदनी बचाई है पर पराई पर भले बुरेका बराव करने का [illegible] ऐसी को धन कहा चाहिये जो इस में वे बडे कायर हैं [illegible] टटोल तेहैं बांह जो आंखों से सहज में देख सकेंगे उसको [illegible] न देखकर आंखोंको व्यर्थमाये चलावने हैं ऐसी ऐसी बातों के विचार सेनाना देशके सत्य समाचार हिन्दुस्तानी लोग देखकर आप यह ओर समझ लेंस ओपराद अपेक्षा ओ अपने भावे को उपज न छोड़ें इस लिये बड़े दया वान करुणा ओर गुणनि के निधान सब के कल्यान के बिषय श्रीमान गवरनर जनेरेल बहादुर की आयस से ऐसे साहस में चित्त लगायके एक प्रकारसे यह नया ठाट ठाटा जो कोई प्रशस्त लोग इस खबर के कागज के लेने की इच्छा करें तो अमड़ तला की गली ३७ अङ्क मार्त्तण्ड छापा घरमें अपना नाम ओ ठिकाना भेज नेही से सत बारे के सतवारे यहाँ के रहन वाले घर बैठे ओ वाहिर के रहने वाले डाक पर कागज पाया करेंगे इसका मोल महीने में दो रुपया ओ डाकके

सप्रे संग्रहालय

वस्तुतः इन गंभीर सवालों के जवाब में हिन्दी पत्रकारिता का भविष्य छिपा हुआ है। यह यक्ष प्रश्न है कि जब हिन्दी पत्रकारिता के सामने विकट चुनौतियाँ थीं, साधनहीनता थी, संरक्षण की दूर-दूर तक कोई उम्मीद नहीं थी, तब हमारे पुरखों ने सर्वश्रेष्ठ रचा था। आज वैसा दावा नहीं किया जा सकता। स्वतंत्रता के बाद की परिस्थितियों में हिन्दी पत्रकारिता का समग्र और समुन्नत स्वरूप आना बाकी है।

स्वामी, मुद्रक, प्रकाशक विजयदत्त श्रीधर द्वारा दृष्टि आफसेट, भोपाल से मुद्रित तथा माधवराव सप्रे स्मृति समाचारपत्र संग्रहालय एवं शोध संस्थान, भोपाल (म.प्र.) 462 003 से प्रकाशित। संपादक : विजयदत्त श्रीधर